प्रस्तुति

नमस्कार महामंत्र का मूलस्रोत और कर्ता

नमस्कार महामंत्र आदि-मंगल के रूप में अनेक आगमों और ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। अभयदेव सूरी ने भगवती सूत्र की वृत्ति के प्रारम्भ में नमस्कार महामंत्र की व्याख्या की है। प्रज्ञापना के आदर्शों में प्रारम्भ में नमस्कार महामंत्र लिखा हुआ मिलता है, किन्तु मलयगिरि ने प्रज्ञापनावृत्ति में उसकी व्याख्या नहीं की। षट्खण्ड के प्रारम्भ में नमस्कार महामंत्र मंगल-सूत्र के रूप में उपलब्ध है। इन सब उपलब्धियों से उसके मूल स्रोत का पता नहीं चलता। महानिशीथ में लिखा है कि पंचमंगल महाश्रुतस्कंध का व्याख्यान सूत्र की निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णियों में किया गया था और वह व्याख्यान तीर्थंकरों के द्वारा प्राप्त हुआ था। कालदोष से वे निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णियां विच्छिन्न हो गई। फिर कुछ समय बाद वज्रस्वामी ने नमस्कार महामंत्र का उद्धार कर उसे मूल सूत्र में स्थापित किया। यह बात वृद्ध सम्प्रदाय के आधार पर लिखी गई है। इससे भी नमस्कार मंत्र के मूलस्रोत पर कोई प्रकाश नहीं पड़ता।

आवश्यक निर्युक्ति में वज्रसूरी के प्रकरण में उक्त घटना का उल्लेख भी नहीं है। वज्रसूरी दस पूर्वधर हुए हैं उनका अस्तित्वकाल ई० पू० पहली शताब्दी है। शय्यंभवसूरी चतुर्दश पूर्वधर हुए हैं और उनका अस्तित्वकाल ई० पू० ५-६ शताब्दी है। उन्होंने कायोत्सर्ग को नमस्कार के द्वारा पूर्ण करने का निर्देश किया है। दशवैकालिक सूत्र की दोनों चूर्णियों और हारिभद्रीय वृत्ति में नमस्कार की व्याख्या 'णमो अरहंताणं' मंत्र के रूप में की है।

आचार्य वीरसेन ने षट्खण्डागम के प्रारम्भ में दिए गए नमस्कार मंत्र को निबद्ध मंगल बतलाया है। इसका फलित यह होता है कि नमस्कार महामंत्र के कर्ता आचार्य पुष्पदन्त हैं। आचार्य वीरसेन ने यह किस आधार पर लिखा, इसका कोई अन्य प्रमाण उपलब्ध नहीं होता। जैसे भगवती-सूत्र की प्रतियों के प्रारम्भ में नमस्कार महामंत्र लिखा हुआ था और अभयदेवसूरी ने उसे सूत्र का अंग मानकर उसकी व्याख्या की, वैसे ही आचार्य पुष्पदन्त को उसका कर्ता बतला दिया। आचार्य पुष्पदन्त का अस्तित्वकाल वीर-निर्वाण की सातवीं

माना जाए, तो पंच मंगलरूप नमस्कार महामंत्र के कर्ता भी गौतम गणधर ही ठहरते हैं।

नमस्कार महामंत्र के पदों का क्रम

नमस्कार महामंत्र के पदों का क्रम भी चर्चित रहा है। क्रम दो प्रकार का होता है—पूर्वानुपूर्वी और पश्चानुपूर्वी। पूर्वपक्ष का कहना है कि नमस्कार महामंत्र में ये दोनों प्रकार के क्रम नहीं हैं। यदि पूर्वानुक्रम हो तो 'णमो सिद्धाणं' 'णमो अरहंताणं' ऐसा होना चाहिए। यदि पश्चानुपूर्वी क्रम हो तो 'णमो लोए सव्वसाहूणं'—यहां से प्रारम्भ होना चाहिए और उसके अन्त में 'णमो सिद्धाणं' होना चाहिए। उत्तरपक्ष का प्रतिपादन यह रहा है कि नमस्कार महामंत्र का क्रम पूर्वानुपूर्वी ही है। इसमें क्रम का व्यत्यय नहीं है। इस क्रम की पुष्टि के लिए निर्युक्तिकार ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि सिद्ध, अर्हत् के उपदेश से ही जाने जाते हैं। वे ज्ञापक होने के कारण हमारे अधिक निकट हैं, अधिक पूजनीय हैं, अत उनको प्रथम स्थान दिया गया। आचार्य मलयगिरि ने एक तर्क और प्रस्तुत किया कि अर्हत् और सिद्ध की कृतकृत्यता में दीर्घकाल का व्यवधान नहीं है। उनकी कृतकृत्यता प्राय समान ही है। आत्म-विकास की दृष्टि से देखा जाए तो अर्हत् और सिद्ध में कोई अन्तर नहीं होता। आत्म-विकास में बाधा डालने वाले चार घात्य कर्म ही हैं। उनके क्षीण होने पर आत्म-स्वरूप पूर्ण विकसित हो जाता है। विकास का एक अंश भी न्यून नहीं रहता। केवल भवोपग्राही कर्म शेष रहने के कारण अर्हत् शरीर को धारण किये रहते हैं। अत यह नहीं कहा जा सकता कि अर्हत् से सिद्ध बड़े हैं। नैश्चयिक दृष्टि से बड़े-छोटे का कोई प्रश्न ही नहीं है। यह प्रश्न मात्र व्यावहारिक है। व्यवहार के स्तर पर अर्हत् का प्रथम स्थान अधिक उचित है। अर्हत् या तीर्थंकर धर्म के आदिकर होते हैं। धर्म का स्रोत उन्हीं से निकलता है। उसी से निष्णात होकर अनेक व्यक्ति सिद्ध बनते हैं। अत व्यवहार के धरातल पर धर्म के आदिकर या महास्रोत होने के कारण जितना महत्त्व अर्हत् का है, उतना सिद्ध का नहीं। प्रथम पद में अर्हत् शब्द के द्वारा केवल [illegible] नैश्चयिक
[illegible] सब
[illegible] ये पद
[illegible]

यह प्रश्न किया गया कि आचार्य अर्हत् के भी ज्ञापक होते हैं, इसलिए 'णमो आयरियाणं' यह प्रथम पद होना चाहिए। इसके उत्तर में निर्युक्तिकार ने कहा—आचार्य अर्हत् की परिषद् होते हैं। कोई भी व्यक्ति परिषद् को प्रणाम कर राजा को प्रणाम नहीं करता। अर्हत् और सिद्ध दोनों तुल्य-बल हैं, इसलिए

२. सप्ताक्षरी मंत्र—१. णमो अरहंताणं, २ णमो आयरियाणं ३ णमो उवज्झायाणं।
३. पंचाक्षरी मंत्र—णमो सिद्धाणं।
४. नवाक्षरी मंत्र—णमो लोए सव्वसाहूणं।
इस महामंत्र का खण्ड रूप में भी जप किया जाता है। जैसे—
१. अरहंताणं, २ सिद्धाणं, ३ आयरियाणं ४ उवज्झायाणं ५ साहूणं।

ये सब विभिन्न आन्तरिक शक्तियों को जागृत करने वाले अनुभूत प्रयोग हैं। नमस्कार महामंत्र के मंत्र शास्त्रीय संक्षिप्त रूप भी मिलते हैं। जैसे—
१ ॐ असि आ उ सा (पंचाक्षरी मंत्र)।
२. अरहंत सिद्ध आयरिअ उवज्झाय साहू (षोडशाक्षरी मंत्र)

बीजाक्षरों के साथ नमस्कार महामंत्र के सैकड़ों प्रयोग मिलते हैं। अनेक आचार्यों ने इस महामंत्र पर अनेक कल्प-ग्रन्थ और मंत्र शास्त्रीय ग्रन्थ लिखे हैं। ग्रह-शान्ति और विघ्न-शान्ति, कायोत्सर्ग-पद्धति और वज्रपंजर आदि विभिन्न दिशाओं में इस महामंत्र का प्रयोग किया है। जैन परम्परा में मंत्र-शास्त्र के अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं, किन्तु नमस्कार महामंत्र का जितना व्यापक प्रयोग किया गया, उतना अन्य किसी भी मंत्र का नहीं किया गया। नमस्कार महामंत्र के जैसे जप के प्रयोग मिलते हैं, वैसे ही इसके ध्यान के प्रयोग भी उपलब्ध होते हैं। 'नवपद ध्यान' जैन परम्परा में बहुत प्रसिद्ध है। चैतन्य केंद्रों पर भी नमस्कार मंत्र का ध्यान किया जाता है। पुरुषाकार ध्यान करने की पद्धति भी रही है। इस प्रकार नमस्कार महामंत्र के सर्व दिशाव्यापी प्रयोग किए गए। उनकी सफलता के आधार पर ही नमस्कार महामंत्र को 'सव्व पावप्पणासणो' कहा गया।

इस महामंत्र पर विशाल साहित्य प्रकाश में आया है। फिर भी ध्वनि-विज्ञान के प्रयोग और परीक्षणों के आधार पर इसके मूल्यांकन की आज भी अपेक्षा है। इसकी उच्चारण-विधि और उससे उत्पन्न होने वाली ध्वनि-तरंगों के बारे में हमारी जानकारी अपर्याप्त है। इसलिए इस विषय को अभी मैं अनुसंधान और गवेषणा के अन्तर्गत ही मानता हूं। मैंने बीकानेर के प्रेक्षा-ध्यान-शिविर में नमस्कार महामंत्र के प्रयोग कराए और वे प्रयोग काफी सफल रहे। मैं उनको सफल इस दृष्टि से मानता हूं कि उनकी प्रतिक्रिया तत्काल प्रकट होती थी। ध्यान करने वाले को कभी प्रबल गर्मी का अनुभव करना पड़ा, तो कभी वे सर्दी का अनुभव करने लगते। प्रत्येक पद की चतुष्पाद ध्यान-पद्धति में नए-नए अनुभव हुए और स्वभाव-परिवर्तन के उदाहरण सामने आए। मुझे लगा कि नमस्कार महामंत्र का उपयोग आत्मानुभूति के लिए भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसी दृष्टिकोण से प्रस्तुत पुस्तक में उसकी चर्चा हुई है। साथ-साथ

ग्रहों के उपद्रवों की शांति के लिए नमस्कार महामंत्र

- सूर्य और मंगल — ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं ।
- चन्द्र और शुक्र — ॐ ह्रीं णमो अरहंताणं ।
- बुध — ॐ ह्रीं णमो उवज्झायाणं ।
- गुरु — ॐ ह्रीं णमो आयरियाणं ।
- शनि, राहु और केतु — ॐ ह्रीं णमो लोए सव्व साहूणं ।

१

अनन्त की अनुभूति

- हम अनन्त से अपरिचित हैं।
- अनन्त से अपरिचित होने का अर्थ अपने आप से अपरिचित होना है।
- हमारा अस्तित्व अनन्त है, किन्तु हम शरीर की सीमा में बंदी हैं, इसलिए अपने आपको ससीम अनुभव कर रहे हैं।
- शरीर की सीमा के दो प्रहरी हैं—अहंकार और ममकार।
- अहंकार समानता के सूत्र को काट देता है।
- ममकार विजातीय में सजातीय की भावना भर देता है।
- असीम का बोध अनन्त की अनुभूति द्वारा। उसके साधन हैं—संयम, तप, ध्यान, मंत्र और तंत्र।
- मंत्र की अचिन्त्य शक्ति।
- मंत्र प्रतिरोध-शक्ति भी है और चिकित्सा भी है।
- णमो अरहंताणं

  णमो—अहं का विसर्जन

  अरहंताणं—ममत्व का विसर्जन
- अनन्त की अनुभूति तब तक नहीं जब तक अपूर्णता।
- अपूर्णता के तीन लक्षण—अज्ञान, मूर्च्छा, अंतराय—विघ्न।
- इस सप्ताक्षरी मंत्र से अपूर्णता समाप्त होती है।

•

अन्दर था एक बड़ा-सा हीरा जो चमक रहा था। मित्र ने कहा—'अब बोलो, जिसके पास यह हीरा हो, वह भिखारी कैसे हो सकता है ? तुम लाखों रुपयों की सपदा अपने गले में बांधे फिरते हो, फिर दरिद्र कैसे ? तुम धनी हो।'

बहुत बार ऐसा होता है, व्यक्ति को अपनी अटूट सपदा का पता नही रहता। मनुष्य अपने से बहुत अनजान है इसीलिए अपने को अज्ञानी, अशक्त और मूर्च्छा में आसक्त समझता है। वह असीम है, अनन्त है, फिर भी अपने को ससीम अनुभव कर रहा है। उसे अनन्तता की विस्मृति हो गई है। इस विस्मृति ने उसे सीमा मे डाल दिया। आदमी ससीम नहीं है। वह असीम है, अनन्त है। किन्तु वह ससीम मान बैठा है। उसकी सीमा के दो प्रहरी हैं। एक है—अहंकार और दूसरा है—ममकार। ये दोनो प्रहरी शरीर के भीतर बैठे हुए अनन्त चैतन्यको बाहर नही आने देते। मनुष्य को मूल परिचय से वंचित रखने वाले इन दोनो प्रहरियो ने मनुष्य को सीमा में बांध रखा है। शरीर एक सीमा है। जब अहकार की चेतना जागती है तब व्यक्ति सबसे टूट जाता है। समानता का सूत्र अस्त-व्यस्त हो जाता है। एक आदमी दूसरे आदमी के समान है। दोनो मे कोई अन्तर नहीं है। कोई किसी से हीन नही है। कोई किसी से अतिरिक्त नही है। किन्तु अहकार की चेतना ने व्यक्ति को ऐसा बांधा कि वह अनेक उपाधियो के साथ अपने आपको अनुभव करने लगा। कोई भी व्यक्ति इस दुनिया मे ऐसा नही है जो अपने को निरुपाधिक कह सके। सबके पीछे अहकार की उपाधिया जुड़ी हुई हैं। मैं व्यापारी हू। मैं कर्मचारी हू। मैं ग्रेजुएट हू। मैं बुद्धिवादी हू। मैं अमुक हू, मैं अमुक हू—इस प्रकार सब अहकार के सूत्र से बटे हुए हैं। 'मैं विद्वान हू'—इसका अर्थ यह हुआ कि मैं अन्य लोगो से अलग हो गया और समानता का सूत्र टूट गया। दो श्रेणिया बन गई। एक विद्वानों की श्रेणी और दूसरी अविद्वानो की श्रेणी। एक स्वामी की श्रेणी और दूसरी सेवक की श्रेणी। अहंकार ने व्यक्ति को इतना बाट दिया, व्यक्ति-व्यक्ति के बीच इतनी सीमा-रेखाए खीच दी कि व्यक्ति मूलभूत समानता को विस्मृत कर अलग-अलग खेमो मे बट गए।

हमारे शरीर की सीमा का दूसरा प्रहरी है—ममकार। ससीम मनुष्य का ममकार असीम हो गया है। मनुष्य पदार्थ के प्रति इतना मूर्च्छित है कि वह जो अपना नहीं है, उसे भी अपना मान बैठा है। 'यह मेरा है'—इस चिन्तन ने सारी समस्याओं को जन्म दे डाला। मेरेपन की भावना शरीर तक ही सीमित नही है, वह असीम हो गई है। जो सपदा, जो पदार्थ आत्मा से सबधित नही हैं, जो सर्वथा विजातीय है, उसे भी मनुष्य ने अपना मान लिया। उसे अपना मानकर मनुष्य ने उस पर ममकार का आवरण डाल दिया। ममत्व से उसे बाध लिया। इस ममत्व के कारण समानता की अनुभूति टूट गई।

इन तत्त्वो ने मनुष्य को सीमित कर दिया। उसकी अनन्त की अनुभूि

प्रभावित करते हैं।

भगवान् महावीर ने विश्व-स्थिति के दस सूत्र बतलाए। उनमें एक सूत्र का प्रतिपाद्य है—प्रत्येक पदार्थ दूसरे पदार्थ से प्रभावित होता है। अप्रभाव क्षेत्र जैसा कुछ भी नहीं है। व्यक्ति जिन ग्रहों में जन्म लेता है, उन ग्रहों के विकिरण व्यक्ति को प्रभावित करते हैं। जैसे-जैसे संक्रमण होता है, व्यक्ति अच्छा या बुरा बन जाता है। ज्योतिषियों ने इस विषय में अनेक अनुसंधान किए। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि ग्रहों के दुष्प्रभाव से बचने के लिए, अनेक उपायों में से एक उपाय है—रत्नों को शरीर पर धारण करना। ग्रहों के दुष्प्रभाव से बचाना रत्नों का अचिन्त्य प्रभाव है। ग्रह भाग्य को नहीं बदल सकते, किन्तु ग्रहों से आने वाले विकिरण को झेलने की क्षमता रत्नों में होती है और व्यक्ति का भाग्य बदल जाता है। रत्न ग्रहों के दुष्प्रभाव को अपने पर झेल लेते हैं और व्यक्ति का बचाव हो जाता है। घटना का जो निमित्त बनता है, वह निमित्त टल जाता है। रत्नों की इस विशेषता को लक्ष्य करके ही कहा गया है कि मणि, मंत्र और औषधियों का प्रभाव अचिन्त्य होता है।

एक आदमी के पास मूंगा था। उसको रेशमी कपड़े से ढक दिया। उस कपड़े पर जलता हुआ अंगारा रखा। वस्त्र नहीं जला क्योंकि अंगारे की उष्मा को मूंगा खींच लेता है, कपड़े को जलने के लिए उष्मा ही प्राप्त नहीं होती।

इसी प्रकार रत्न ग्रहों के विकिरणों को अपने में समाविष्ट कर लेते हैं और व्यक्ति बच जाता है। रत्नों की इस क्षमता के कारण ही उनको अचिन्त्य प्रभाव वाला माना गया है।

आज के वैज्ञानिक लेसर किरण का उपयोग करते हैं। लाल रत्न से उसका आविष्कार किया गया। इस प्रसंग में मैं एक प्राचीन तथ्य की स्मृति दिलाना चाहता हूं जो विस्मृत हो चुका है। जैन आगमों में वैक्रिय शरीर के निर्माण के विषय में अनेक प्रसंग उल्लिखित हैं। देवता वैक्रिय शरीर की संरचना करते हैं और लब्धिसंपन्न मनुष्य भी वैक्रिय शरीर की संरचना करते हैं। वैक्रिय शरीर [illegible]

संकलन कर नानारूप बनाए जा सकते हैं और वैक्रिय शक्ति का विकास और उपयोग किया जा सकता है। इन सारे रहस्यों को ध्यान में रखकर कहा गया है कि रत्नों का प्रभाव अचिन्त्य होता है।

वनस्पति का प्रभाव भी कल्पनातीत होता है। सिद्धि के अनेक साधन हैं। औषधि से भी सिद्धि प्राप्त होती है, तप से भी सिद्धि प्राप्त होती है और समाधि से भी सिद्धि प्राप्त होती है। एक व्यक्ति अपने पैरों पर औषधियों का लेप करता

की ओर ध्यान दें। हमारा केवल यह स्थूल शरीर ही नहीं है। साधना प्रारम्भ करने वाले व्यक्ति को सबसे पहले यह मानना जरूरी है कि मैं जो यह साधना कर रहा हूं वह केवल स्थूल शरीर के लिए ही नहीं कर रहा हू। स्थूल शरीर को लाभ होता है किन्तु मेरा उद्देश्य इससे आगे है, गहरा है। जो व्यक्ति स्थूल शरीर को पार कर भीतर नहीं झांक सकता वह व्यक्ति साधना मे विकास नहीं कर सकता। इस स्थूल शरीर से परे एक सूक्ष्म शरीर है। इस सूक्ष्म शरीर से परे एक अतिसूक्ष्म शरीर है। स्थूल शरीर को हम औदारिक शरीर कहते हैं, सूक्ष्म शरीर को तैजस शरीर और अतिसूक्ष्म शरीर को कार्मण शरीर कहते हैं। पिरामोलिज्स्ट्स ने इन शरीरों को भिन्न संज्ञाएं दी है—फिजिकल बॉडी, एथेरिक बॉडी और एस्ट्रल बॉडी। फिजिकल बॉडी स्थूल शरीर है, एथेरिक बॉडी सूक्ष्म शरीर है और एस्ट्रल बॉडी अतिसूक्ष्म शरीर है। जब तक तैजस शरीर और कार्मण शरीर को प्रभावित नहीं किया जा सकता तब तक साधना सफल नहीं हो सकती, अध्यात्म की उपलब्धि नहीं हो सकती। अध्यात्म के नए-नए पर्यायों को उद्घाटित करने के लिए तैजस शरीर को जागृत करना जरूरी है और कार्मण शरीर को प्रभावित करना जरूरी है। इन दोनों शरीरों की जागृति के लिए तप का आलम्बन आवश्यक होता है। जब तप के द्वारा मनोयोग के परमाणु, वचनयोग के परमाणु, काययोग के परमाणु, सूक्ष्म शरीर और अतिसूक्ष्म शरीर के परमाणु उत्तप्त होते हैं, तब वे अपने मलिन परमाणुओं को छोड़कर निर्मल बनते हैं और उस स्थिति मे साधना की सफलता प्रारम्भ होती है। बिना ताप के यह नहीं हो सकता। ताप के बिना कुछ भी नहीं पिघलता। ताप के बिना बर्फ भी नहीं पिघलती। उसको पिघलने के लिए कुछ न कुछ ताप आवश्यक होता है। इसी प्रकार जो मन चिपटा हुआ है, उसे पिघालने के लिए तप ही एक मात्र साधन है। जब तप या ताप प्राप्त होता है, तब चिपके हुए परमाणु अपना स्थान छोड़ देते हैं। यही निर्मलता है, विशुद्धि है। इस तप की प्रक्रिया मे, अशुद्ध परमाणुओं को उत्तप्त कर पिघालने की प्रक्रिया में, मंत्र-साधना का बहुत बड़ा योगदान है। मंत्र-साधना में हम ध्वनि के द्वारा अ-ध्वनि तक पहुंच जाते हैं। जब हम अध्वनि तक पहुंच जाते हैं तब एक विशिष्ट प्रक्रिया प्रारम्भ होती है।

एक प्रश्न उपस्थित होता है कि हमारी साधना का सूत्र है—'संपिक्खए अप्पगमप्पएणं—आत्मा को आत्मा के द्वारा देखो। यह भीतर जाने का सूत्र है। मंत्र और जप की ओर जाना बाहर जाना है। क्या यह विरोधाभास नहीं है? यह प्रश्न स्वाभाविक है। हम शब्द से अशब्द की ओर जाना चाहते हैं, अनात्मा से आत्मा की ओर जाना चाहते हैं। किन्तु जब हम मंत्र और जप का अनुसरण करते हैं तब यह बाहर की ओर जाना होता है। यह बाहर जाने का उपक्रम है

काल में योद्धा कवच पहनकर ही रणभूमि में उतरते थे। उन कवचों के आधार पर योद्धा शत्रुओं के प्रहारों को झेलने में समर्थ हो जाते थे। मंत्र-साधना कवच बनाने की साधना है। इससे आने वाले प्रकम्पनों के प्रहारों से बचा जा सकता है।

प्रत्येक व्यक्ति के चारों ओर आभामंडल होता है, एक वलय होता है। अच्छा विचार होता है तो अच्छा आभामंडल बन जाता है। बुरा विचार होता है तो बुरा आभामंडल बन जाता है। अच्छा परिणाम अच्छी लेश्या। बुरा परिणाम बुरी लेश्या। हम मंत्रशक्ति का उपयोग करें और शब्दों की ऐसी संयोजना करें कि ऊर्जा का आभामंडल बने। हम उस शब्द-विन्यास का उच्चारण करें। सूक्ष्म उच्चारण करें या सूक्ष्मातिसूक्ष्म उच्चारण करें। उससे ऊर्जा का आभावलय निर्मित होगा। वह इतना शक्तिशाली और इतना प्रतिरोधात्मक बनेगा कि बाहर की कोई भी शक्ति आक्रमण नहीं कर पाएगी। शब्द में अनंत शक्ति होती है। प्रत्येक अक्षर शक्ति से भरा होता है। मंत्रशास्त्र की जो खोजें हुई हैं वे बड़ी अद्भुत हैं। उन खोजों ने जो विवरण प्रस्तुत किया, उसे हम भूल गए, अन्यथा हम औषधि के स्थान पर मंत्र का ही उपयोग करते। संदेशवाहक के स्थान पर हम मंत्र से ही काम लेते। समाचार मंगाने या प्रेषित करने के लिए हम मंत्र का ही उपयोग करते। सारा काम मंत्र से हो जाता।

मंत्रशक्ति का सदुपयोग भी हो सकता है और दुरुपयोग भी हो सकता है। आचार्य भद्रबाहु ने संघ की सुरक्षा के लिए 'उवसग्गहरं स्तोत्र' का निर्माण किया। उसको संघ को देते हुए कहा—'जब भी कोई समस्या आए, विघ्न उपस्थित हो, उस समय इस स्तोत्र का उच्चारण करने पर देव प्रस्तुत होगा, संकट का निवारण करेगा। उपयोग और दुरुपयोग साथ-साथ चलते हैं। एक बहन रसोई बना रही थी। बछड़ा खूंटी पर बंधा था। वह रस्सी तुड़ाकर भाग गया। उस बहन ने सोचा कि रसोई छोड़कर जाना उचित नहीं है। मंत्र का प्रयोग क्यों न करूं? उसने मंत्र जपा। देव उपस्थित हुआ। पूछा—'क्या संकट है?' बहन ने कहा—'कोई संकट नहीं है।' बछड़ा भाग गया है। उसे लाकर बांध दो। देव ने आज्ञा का पालन किया। फिर देव ने आचार्य के पास जाकर सारी बात कही। आचार्य ने स्तोत्र में परिवर्तन कर दिया। उसके जाप से संकट तो दूर होता रहा किन्तु देव की साक्षात् उपस्थिति छूट गई।

'अ' से 'ह' तक प्रत्येक अक्षर का वर्ण होता है। स्वाद होता है। यदि हम उच्चारण की सूक्ष्मता में जाएं तो पता चलेगा कि अक्षरों के उच्चारण के साथ-साथ स्वाद में भी अन्तर आ रहा है। जब यह सूक्ष्म ज्ञान लुप्त हो गया तो मंत्र की शक्ति भी विस्मृत हो गई, उसकी चाभी हमारे हाथ से चली गई। मंत्र-शक्ति शब्द की संयोजना पर निर्भर है। मंत्र-शक्ति का मुख्य तत्त्व है शब्द की

का अर्थ के साथ कोई सीधा संबंध नहीं होता। शब्द और अर्थ में कुछ दूरी होती है। ध्वनि अर्थ के कुछ निकट चली जाती है। 'दूध' एक शब्द है। दूध कहने से पेट नहीं भरता। जहां हमारा शब्द होता है वहां दूध और दूध नाम के पदार्थ—इन दोनों में दूरी होती है। किन्तु जैसे-जैसे हमारी संकल्प-शक्ति दृढ़ होती है, भावना का प्रयोग होता है ध्वनि सूक्ष्म होती चली जाती है, तब शब्द और अर्थ की दूरी कम होती चली जाती है। तब ऐसा भी होता है कि 'दूध' कहते ही दूध तैयार मिलता है। भारतीय साहित्य में तीन शब्द बहुलता से मिलते हैं—कल्पवृक्ष, कामधेनु और चिंतामणि रत्न। ये तीनों इतने शक्तिशाली होते हैं कि जो मांगा वह तैयार। शब्द और अर्थ की सारी दूरी समाप्त। शब्द के साथ-साथ अर्थ की घटना घट जाती है। ऐसा संकल्प-शक्ति के द्वारा भी हो सकता है, होता है। हमारी संकल्प-शक्ति ही कल्पवृक्ष है। हमारी संकल्प-शक्ति ही कामधेनु है और हमारी संकल्प-शक्ति ही चिन्तामणिरत्न है। ये तीनों कामनाओं की पूर्ति करते हैं। जो कामना को पूरा करे वह कामधेनु। जो कल्पना को पूरा करे वह कल्पवृक्ष और जो चिन्तन को पूरा करे वह चिन्तामणि रत्न। ये सब हमारे संकल्प से भिन्न कुछ नहीं है। सब कुछ संकल्प ही है। संकल्प मंत्र का महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। जहां शब्द, ध्वनि और संकल्प-शक्ति तीनों का योग होता है वहां मंत्र की शक्ति जागृत हो जाती है, मंत्र का साक्षात्कार हो जाता है और मंत्र का देवता प्रकट हो जाता है। संकल्प-शक्ति के द्वारा जब आन्तरिक ज्योति का जागरण होता है, उस ज्योति का नाम ही है—देवता। जब हमारा शब्द ज्योति में बदल जाता है तब मंत्र का साक्षात्कार हो जाता है। मंत्र चैतन्य हो जाता है।

मंत्र का चौथा महत्त्वपूर्ण तत्त्व है—श्रद्धा। श्रद्धा का अर्थ है—तीव्रतम आकर्षण। यदि मंत्र के प्रति हमारी कोई श्रद्धा नहीं है, कोई आकर्षण नहीं है, दृढ़ विश्वास नहीं है तो चाहे वर्ण का ठीक समायोजन हो, ठीक उच्चारण हो तो जो घटित होना चाहिए, वह घटित नहीं हो सकता। केवल श्रद्धा के बल पर जो घटित हो सकता है वह श्रद्धा के बिना घटित नहीं हो सकता। पानी तरल है। जब वह जम जाता है, सघन हो जाता है, वह बर्फ बन जाता है। जो हमारी कल्पना है, जो हमारा चिन्तन है वह तरल पानी है। जब वह चिन्तन का पानी जमता है तब वह श्रद्धा बनती है, विश्वास बनता है। तरल पानी में कुछ गिरेगा तो वह पानी को गंदला बना देगा। बर्फ पर जो कुछ गिरेगा वह नीचे लुढ़क जाएगा, उसमें घुलेगा नहीं। जब हमारा चिन्तन विश्वास में बदल जाता है, जब हमारा चिन्तन श्रद्धा में बदल जाता है, तब वह इतना घनीभूत हो जाता है कि बाहर का प्रभाव कम से कम होता है। उस स्थिति में जो घटना घटित होनी चाहिए वह सहज ही घटित हो जाती है।

हमने नमस्कार मंत्र के प्रथम चरण 'णमो अरहंताणं' का प्रयोग किया। आप

न मानें कि हमने केवल 'ण' 'मो' आदि अक्षरों का ही प्रयोग किया है। हम इन अक्षरों को बचपन से जानते हैं, किन्तु इनकी अनन्त शक्ति से परिचित नहीं हैं। यदि हमने शब्द की शक्ति को जाना, वर्णों से बने पद को समझा, वर्णों का समायोजन किया, ध्वनि के सूक्ष्म उच्चारण को समझा, उसके साथ अपना संकल्प जोड़ा, गहरी श्रद्धा का उसमें नियोजन किया तो 'णमो अरहंताणं'—ये सात अक्षर विशाल देवता बन जाएंगे। यह पद पूरा चिन्तामणिरत्न, कल्पवृक्ष या कामधेनु बन जाएगा। इस सत्य को हम समझें।

अध्यात्म का अर्थ ही होता है—आत्मा के भीतर उतरना। केवल शरीर या केवल चमड़ी तक ही नहीं रहना किन्तु इस शरीर और चमड़ी से परे जो है, वहां तक हमें पहुंचना है। यदि वहां पहुंचकर हम सूक्ष्म को समझने का प्रयत्न करें, सूक्ष्म रहस्यों का उद्घाटन करने का प्रयत्न करें, उन दरवाजों को हम खोलें जिनको आज तक हमने नहीं खोला है तो इस सप्ताक्षरी पद से अध्यात्म जागरण की पूरी प्रक्रिया में साधक को योगदान मिल सकता है।

३

मंत्र का प्रयोजन

- मन की शक्ति का उद्दीपन
- विचार-संप्रेषण
- ग्रहण और संप्रेषण
- मन की संवेदनशीलता का विकास
- ऊर्जा की वृद्धि
- दृष्टि मे अंतर्मुखता का विकास
- वीतरागता का विकास, कषाय की क्षीणता

•

प्रेक्षा ध्यान की साधना का सूत्र है—आत्मा के द्वारा आत्मा को देखना, स्वयं के द्वारा स्वयं को देखना। प्रश्न होता है—हम दूसरो को क्यों देखें ? अर्हत् को क्यो देखें ? आवश्यकता क्या है दूसरो को देखने की, जब हमे स्वयं को देखना है ? जब हम दूसरों को देखते हैं तब प्रेक्षा-सूत्र से दूर चले जाते हैं, और कुछ घटित होता है। इस प्रश्न पर हमे विमर्श करना है।

संस्कृत के कवि ने कहा है—

गुणिनामपि निजरूपप्रतिपत्ति , परत एव संभवति।
स्वमहिमदर्शनमक्ष्णोर्मुकुरतले जायते यस्मात्॥

गुणी मनुष्य भी अपने आपको समझने के लिए दूसरे का सहारा लेता है। वह दूसरे के द्वारा अपने को देखता है। आंख सबको देखती है, किन्तु अपने आपको देखने के लिए उसे दर्पण का सहारा लेना पड़ता है।

स्वयं को देखने के लिए भी कभी-कभी दूसरो का सहारा लेना पड़ता है। हम

शब्द का, मंत्र का, रूप का और शरीर का सहारा लेते हैं। हम अर्हत् का सहारा लेते हैं, जिससे कि हम अपने को देख सकें। यह देखने के लिए आलंबन है, न कि अपने दर्शन की यात्रा से दूर जाने के लिए। हमसे केवल अन्तर्यात्रा ही हो। हमारा यात्रा-पथ निर्विघ्न हो। हमारा पथ पूर्ण आलोकित हो। कहीं कोई अंधकार न आए। इस सारे उपक्रम के लिए हम वैसे ही दूसरे का सहारा लेते हैं जैसे आंख अपने आपको देखने के लिए दर्पण का सहारा लेती है।

प्रश्न हो सकता है—क्या मंत्र के द्वारा अपने आपको देखा जा सकता है? क्या शब्द के द्वारा अपने आपको देखा जा सकता है? आत्मा को देखा जा सकता है? प्रश्न बहुत ही स्वाभाविक है। आत्मा को मंत्र और शब्द के द्वारा कैसे देखा जा सकता है? आत्मा अ-शब्द है। शब्द की पहुंच वहां तक नहीं हो सकती। आत्मा अतर्क्य है। तर्क वहां तक नहीं पहुंच पाता। आत्मा अनिर्वचनीय है। वाणी वहां तक नहीं पहुंच पाती। आत्मा शब्दातीत, तर्कातीत और वचनातीत है। ऐसी स्थिति में क्या शब्द, तर्क और वचन आत्म-साक्षात्कार में सहयोग कर सकते हैं? क्या ये साधन सक्षम हैं?

इन प्रश्नों की समीक्षा में हमें मंत्र के प्रयोजनों पर विचार करना होगा। मंत्रशास्त्र ने मंत्र के प्रयोजनों का विवरण प्रस्तुत किया है। उसके मुख्यतः छह प्रयोजन निर्दिष्ट हैं—मारण, उच्चाटन, संतापन, विद्वेषण, मोहन और वशीकरण। मारने के लिए मंत्र का उपयोग किया जाता है। सम्मोहित करने के लिए मंत्र का उपयोग किया जाता है। उच्चाटन और विद्वेषण के लिए मंत्र का उपयोग किया जाता है। संतप्त करने के लिए मंत्र का उपयोग किया जाता है।

जंबूकुमार ने आठ रमणियों के साथ विवाह किया। अपार धन दहेज में प्राप्त हुआ। पांच सौ चोर चोरी करने आए। माल एकत्रित किया। उसे उठाने लगे तो ज्ञात हुआ कि हाथ-पैर स्तंभित हो गए हैं। न हाथ उठता है और न पैर चलते हैं। चोरों का सरदार जंबूकुमार के पास जाकर बोला—जंबूकुमार! मैंने तुम्हारी शक्ति देख ली। तुम बड़े मंत्रवादी हो। मैं तुम्हारे सामने नतमस्तक हूं। मेरे पास दो विद्याएं हैं। एक है—अवस्वापिनी। इसके द्वारा सबको नींद दिलाई जा सकती है। दूसरी है—तालोद्घाटिनी। इसके द्वारा ताले बिना चाबी घुमाए ही खुल जाते हैं। मैं ये दोनों विद्याएं तुम्हें देता हूं और तुम मुझे अपनी स्तंभिनी विद्या दो। यह विद्या दोनों विद्याओं से भारी है, मूल्यवान् है।

इस प्रकार के अनेक प्रयोजन हैं मंत्रविद्या के। मन्त्रशास्त्रों में इन प्रयोजनों को छह भागों में बांटा गया है। मुझे लगता है कि यह विभाजन मंत्रशास्त्र के प्रति [illegible] भ्रान्ति का कारण बना है। जन-मानस में एक भ्रम फैल गया कि मंत्रों का अध्यात्म के लिए क्या उपयोग है? अध्यात्म और मंत्र का संबंध ही क्या? कोई [illegible] है। दोनों की दो भिन्न दिशाएं हैं। ऐसा इसलिए हुआ कि मंत्रों के छह

प्रयोजन जब सामने आए तब लोगों ने सोचा—'जो मंत्रविद् होते हैं वे किसी को मार देते हैं, किसी का उच्चाटन कर देते हैं, किसी को वश में कर लेते हैं। यह मंत्रविद्या अच्छी विद्या नहीं है।' इस प्रकार यह गलत भावना मंत्रों के प्रति पैदा हो गई।

मंत्र एक शक्ति है। शक्ति का उपयोग अच्छे काम के लिए भी हो सकता है और बुरे काम के लिए भी हो सकता है। चाकू से ऑपरेशन भी होता है और चाकू से दूसरे का गला भी काटा जाता है। शक्ति शक्ति होती है। उसका अच्छा या बुरा प्रयोग करना प्रयोक्ता पर निर्भर करता है। शक्ति अपने आप में अच्छी या बुरी नहीं होती।

मंत्र एक शक्ति है, ऊर्जा है। उस शक्ति के द्वारा अध्यात्म का दरवाजा बन्द भी किया जा सकता है और खोला भी जा सकता है। अध्यात्म के जागरण में मंत्र का बहुत बडा योग हो सकता है। इस भ्रान्ति को मिटा दें कि मंत्र-प्रयोग के केवल छह ही प्रयोजन हैं। समय-समय पर मंत्रों के अनेक प्रयोजन सामने आए हैं। मंत्रों से चिकित्सा होती है। मंत्रों के द्वारा भयंकर बीमारियां नष्ट होती हैं। अभी कुछ समय पूर्व नागपुर में मंत्रों के द्वारा चिकित्सा करने का उपक्रम चलाया गया था। फिलिपाईन के कुछ व्यक्ति बिना आपरेशन किए, चीडफाड किए, पेट से गांठ निकाल देते हैं। आज के वैज्ञानिक इस खोज में हैं कि भविष्य में ऑपरेशन करते समय औजारों को काम में न लिया जाए किन्तु सूक्ष्म ध्वनि के द्वारा ऑपरेशन की क्रिया सपन्न कर दी जाए। मंत्र सूक्ष्म ध्वनि है। यह ध्वनितरंग है। ध्वनितरंगों का उपयोग आज अनेक क्षेत्रों में हो रहा है। हीरा कठोर धातु है। हीरे को हीरे से ही काटा जा सकता है, किन्तु आज सूक्ष्म ध्वनि से हीरे काटे जाते हैं। पारा और पानी का मिश्रण नहीं होता। सूक्ष्म ध्वनि के प्रयोग से पारे में पानी मिल जाता है। सूक्ष्म ध्वनि से कपड़ों की धुलाई होती है।

नागपुर के पास खाकरी रेलवे स्टेशन है। वहां एक संस्था स्थापित हुई है। वह संस्था कृषि पर मंत्रों का अनुसंधान कर रही है। उसके कुछ प्रयोग सामने आए हैं। उन्होंने बैंगन, ककडी आदि बोए। एक खेत में रासायनिक खाद डाली गई, बीज बोए गए, पूरा पानी दिया गया, सुरक्षा की गई। दूसरे खेत में खाद नहीं डाली, केवल बीज बो दिए गए। उसमें मंत्रों के द्वारा अभिमंत्रित पानी सींचा गया। परिणाम यह आया कि जितने स्थान में रासायनिक खाद के द्वारा १६ किलो ककडी पैदा हुई, उतने ही स्थान में अभिमंत्रित जल के द्वारा ४० किलो ककड़ी हुई। जहां रासायनिक खाद की भूमि में ३५ किलो बैंगन हुए, वहां अभिमंत्रित जल के द्वारा ७० किलो बैंगन हुए। यह सारा सूक्ष्म ध्वनि का चमत्कार है।

ध्वनि के प्रयोग भावना के द्वारा वनस्पति पर किए गए। वनस्पति का बहुत विकास हुआ। गाय को संगीत सुनाते हैं। उसका दूध बढ़ जाता है। मंत्रों की

से वातावरण को प्रकंपित किया जाता है। उन प्रकंपनों के द्वारा अद्भुत काम संपादित होते हैं। हम उनकी कल्पना भी नहीं कर सकते। मैं इस लम्बी चर्चा में नहीं जाऊंगा। मंत्र के द्वारा आध्यात्मिक जागरण संभव है, यह जान लेना चाहिए। यदि मंत्रों का आध्यात्मिक जागरण में प्रयोग किया जाए तो आध्यात्मिक जागरण में सरलता और सहजता आ जाती है।

दीर्घश्वास-प्रेक्षा, शरीर-प्रेक्षा, चैतन्य-केन्द्र-प्रेक्षा, लेश्या ध्यान आदि के द्वारा बहुत लोग लम्बी यात्रा न कर सकें किन्तु मंत्र के माध्यम से अनेक व्यक्ति अध्यात्म की दिशा में लम्बी यात्रा कर सकते हैं। इसलिए प्रत्येक धर्म ने अपने-अपने मंत्रों का चुनाव किया और उनके द्वारा अपने धर्म की यात्रा शुरू की। वे आगे बढ़ते गए।

हमारी आध्यात्मिक जागरण की समस्या तब तक हल नहीं होती जब तक शरीर के चैतन्य-केन्द्र जागृत नहीं हो जाते, बहिर्मुखी वृत्ति टूट नहीं जाती, कामनाएं क्षीण नहीं हो जातीं, उनके प्रति हमारा आकर्षण समाप्त नहीं हो जाता। जब तक अन्तर्मुखी वृत्ति में रस और बहिर्मुखी वृत्ति की विरति नहीं होती तब तक समस्या हल नहीं होगी।

दो धाराएं हैं—काम और निष्काम। इन धाराओं पर मंत्र के द्वारा बहुत बड़ा प्रयोग किया जा सकता है। बहिर्मुखी व्यक्ति अन्तर्मुखी कैसे बन सकता है, यह एक प्रश्न है। कोई व्यक्ति हजार बार भी किसी को कहे—कामनाओं को छोड़ो, निर्विकार बनो, परमार्थी बनो, विषयों की निवृत्ति करो, वह व्यक्ति सुनता है, बनना चाहता है पर बन नहीं सकता। यह समस्या कैसे समाहित हो? अन्तर तब आता है जब कोई आंतरिक घटना घटित होती है। आंतरिक घटना घटित हुए बिना केवल शब्द के स्पर्श मात्र से अन्तर की संभावना और परिकल्पना नहीं की जा सकती। उस आंतरिक घटना का नया नाम है—रासायनिक परिवर्तन, जैविक-रासायनिक परिवर्तन। जब तक हमारे रसायनों में परिवर्तन नहीं होता, भीतर के स्रावों में परिवर्तन नहीं होता, ग्रंथियों के हारमोन्स में परिवर्तन नहीं होता तब तक स्वभाव का परिवर्तन नहीं होता। मनुष्य-स्वभाव के परिवर्तन के लिए बहुत जरूरी है कि रसायनों का परिवर्तन हो, ग्रंथियों के हारमोन्स का परिवर्तन हो। वह रासायनिक परिवर्तन औषधि के द्वारा भी होता है और मंत्र के द्वारा भी होता है। मन की [illegible] औषधियों का आज प्रचुर प्रचार हो रहा है। आदमी एक [illegible] हो जाता है और [illegible] लोक की यात्रा करता है जहां [illegible] है। मनुष्य मानता है कि इस अशांत विश्व में शान्ति [illegible] है। वह गोलियां खाता जाता है। [illegible] भी गोलियां खाता है। [illegible] औषधियों से [illegible] होता है। औषधि से सिद्धि [illegible] सकता है। औषधि के द्वारा

चीजों को देखा जा सकता है। औषधि के द्वारा दूर की वस्तुओं को देखा जा सकता है, सूक्ष्म लोक की घटनाओं का साक्षात् किया जा सकता है। यह इसलिए है कि दवा के द्वारा रासायनिक परिवर्तन होता है और इस परिवर्तन के होने से हम दूसरे जगत् में चले जाते हैं।

जैसे औषधि के द्वारा रासायनिक परिवर्तन होता है, वैसे ही मंत्र के द्वारा रासायनिक परिवर्तन होता है। प्रत्येक अक्षर का अपना रसायन है। एक अक्षर का उच्चारण किया और एक प्रकार का रसायन निर्मित हो गया। 'र' के उच्चारण से तापमान बढ़ जाता है और 'ह' के उच्चारण से तापमान घट जाता है। 'ह' के उच्चारण से लीवर प्रभावित होता है, वह सक्रिय हो जाता है। प्रत्येक वर्ण का अपना प्रभाव होता है, अपना पृथक् रसायन होता है। वह रसायन हमारे शरीर को प्रभावित करता है। मंत्रशास्त्र ने वर्णमाला का एक पूरा व्याकरण बनाया। यह अक्षर का व्याकरण है। प्रत्येक अक्षर पर विभिन्न दृष्टिकोणों से विचार किया गया है।

आध्यात्मिक जागरण की पहली बात है—सुषुम्ना का जागरण। हमारी प्राणधारा के तीन प्रवाह हैं—इडा, पिंगला और सुषुम्ना, बाया स्वर, दाया स्वर और मध्य का स्वर। बाए को इडा, दाए को पिंगला और मध्य को सुषुम्ना कहा जाता है। सामान्यतः हमारा स्वर दायां-बाया चलता है, मध्य का स्वर कम चलता है। जब मध्य का स्वर चलता है, सुषुम्ना चलती है तब मन शांत होता है, विकल्प कम हो जाते हैं। जब दाया-बाया स्वर चलता है तब मनुष्य की वृत्ति बहिर्मुखी होती है। इन स्वरों में कामनाए बढती हैं, वासनाए उभरती हैं। जब सुषुम्ना का उद्घाटन होता है तब मनुष्य के लिए अंतर्मुखी, निष्काम और निर्विकार होने का द्वार खुलता है। प्राण की धारा जब सुषुम्ना में प्रवाहित होने लगती है तब आध्यात्मिक जागरण प्रारंभ होता है। अध्यात्म जागरण का पहला बिन्दु या उसका पहला चरण है—सुषुम्ना में प्राणधारा का प्रवेश। मंत्र के द्वारा ऐसा किया जा सकता है। मंत्र के द्वारा हम ऐसी सूक्ष्म ध्वनि-तरंगें पैदा करते हैं कि सुषुम्ना के द्वार खुल जाते हैं और व्यक्ति में आध्यात्मिक जागृति की किरण फूट पड़ती है।

सुषुम्ना की यात्रा अध्यात्म की यात्रा है—यह शरीरशास्त्रीय दृष्टिकोण है। दूसरा पहलू है—कषायों का उपशमन। जब कषाय क्षीण या उपशांत होते हैं तब अध्यात्म की यात्रा प्रारम्भ होती है। प्रश्न होता है कि क्या मंत्रों के द्वारा कषाय क्षीण होते हैं? क्या मंत्रों के द्वारा तनाव कम होता है? क्या मंत्रों के द्वारा घृणा, वासना, विकार मिटते हैं? हां, मिटते हैं। 'णमो अरहंताणं'—इस प्रकार के मंत्र के जाप से कषाय क्षीण होते हैं। 'णमो अरहंताणं' के जाप की अनेक विधियां हैं। तैजस केन्द्र में इस मंत्र का ध्यान करने से क्रोध उपशान्त होता है।

क्षीण होता है। आनन्द केन्द्र में इस मंत्र का ध्यान करने से मान, अहंकार क्षीण होता है। विशुद्धि केन्द्र में इस मंत्र का ध्यान करने से माया क्षीण होती है। तालु केन्द्र में इसका ध्यान करने से लोभ क्षीण होता है। इस मंत्र के द्वारा सारे कषाय क्षीण होते हैं। मंत्र से उत्पन्न होने वाली ध्वनि-तरंगों के द्वारा, मंत्र के साथ घुलने वाली भावना के द्वारा, संकल्पशक्ति और मंत्र के साथ होने वाली गहन श्रद्धा के द्वारा तथा मंत्र के साथ होने वाले इष्ट के साक्षात्कार के द्वारा कषाय नष्ट होते हैं।

'णमो अरहंताणं' की चार चरणों में आराधना की जाती है। पहला चरण है—अक्षर ध्यान। प्रत्येक अक्षर का ध्यान। ज्ञानकेन्द्र में श्वेत वर्ण के साथ एक-एक अक्षर का ध्यान। दूसरा चरण है—पूरे पद का ध्यान। तीसरा चरण है—पूरे पद 'णमो अरहंताणं' के अर्थ का ध्यान। इस पद का अर्थ है—अर्हत् को नमस्कार। अर्हत् का अर्थ है—पूर्ण आत्मा। जब तक अपूर्णता है तब तक अर्हत्-स्वभाव प्रकट नहीं होता। अज्ञान एक अपूर्णता है। शक्तिहीनता एक अपूर्णता है। सुख-दुःख की अनुभूति एक अपूर्णता है। दर्शन और चारित्र की न्यूनता एक अपूर्णता है। जब तक ये अपूर्णताएं हैं तब तक अर्हत् तत्त्व का विकास नहीं हो सकता। हमने अर्हत् स्वरूप का ध्यान नहीं किया, इसलिए अपूर्णताएं चल रही हैं। तीसरा चरण है—अर्हत् का ध्यान—ज्ञान की पूर्णता का ध्यान, दर्शन की पूर्णता का ध्यान, शक्ति की पूर्णता का ध्यान और आनन्द की पूर्णता का ध्यान। चौथा चरण है—अपने अर्हत् का ध्यान। अर्हत् कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है, 'मैं स्वयं अर्हत् हूं'—इस भावना का ध्यान।

मैं स्वयं अर्हत् हूं, मुझमें अनन्त ज्ञान विद्यमान है।
मैं स्वयं अर्हत् हूं, मुझमें अनन्त दर्शन विद्यमान है।
मैं स्वयं अर्हत् हूं, मुझमें अनन्त शक्ति विद्यमान है।
मैं स्वयं अर्हत् हूं, मुझमें अनन्त आनन्द विद्यमान है।

हमने इन चारों चरणों का ध्यान किया। हम बाहर से चले, भीतर तक पहुंच गए। हम दूसरे से चले और अपने तक पहुंच गए। हम सालंबन से चले और [illegible] तक पहुंच गए। 'णमो अरहंताणं'—इस पद के द्वारा हमने अपने को [illegible] और [illegible] को प्राप्त करने का प्रयत्न किया।

[illegible] मन में [illegible] जाग जाती है, मन शोक से भर जाता है, [illegible] आ जाता है। [illegible] की बात नहीं है। आगे [illegible] ऐसा उपाय है, [illegible] समाप्त हो जाते हैं। वैज्ञानिक एक ऐसी [illegible] मस्तिष्क में कुछ कभी घटित नहीं होता। [illegible] हो जाए, [illegible] जाए, [illegible] नहीं जाए, [illegible]।

[illegible] कि मनुष्य के शरीर में दो प्रकार की ग्रन्थियां हैं।

एक है सुख की ग्रन्थि और दूसरी है दुःख की ग्रन्थि। दोनों एक दूसरे से सटी हुई हैं। यदि सुख की ग्रन्थि सक्रिय हो जाए तो सुख ही सुख है, चाहे परिस्थिति कुछ भी क्यों न हो। और यदि अकस्मात् दुःख की ग्रन्थि सक्रिय हो जाए तो दुःख ही दुःख है, चाहे फिर विश्व का साम्राज्य ही क्यों न मिल जाए। बड़ा खतरा है। सुख की ग्रन्थि को सक्रिय करने की प्रक्रिया में यदि दुःख की ग्रंथि सक्रिय हो जाए तो व्यक्ति अनन्त दुःख के सागर में डूब जाता है। फिर उबरने का उपाय कठिन है।

हम इन औषधियों और ग्रंथियों के चक्कर में न जाएं। ऐसा निरापद मार्ग खोजें जहां खतरा न हो। वह मार्ग है—मंत्र साधना। मंत्रों के द्वारा सभी प्रकार की स्थितियों से निपटा जा सकता है। सारी समस्याएं हल हो सकती हैं।

आज की सबसे बड़ी समस्या है—विचार निरूपण की। आज के वायुमंडल में इतने दूषित विचार बिखर रहे हैं कि जो आदमी बुरा विचार करना भी नहीं चाहता, वह बुरा विचार कर बैठता है। बुरे विचार बुरे संस्कारों के कारण पैदा होते हैं, यह एक सचाई है। किन्तु यह पूर्ण सत्य नहीं है। वायुमंडल में फैले हुए बुरे विचारों के परमाणु जब सिर से टकराते हैं तब भी बुरे विचार पैदा हो जाते हैं। आदमी अपने बुरे संस्कारों का शोधन करने के लिए तपस्या करता है। वह चाहता है कि बुरे विचार न आएं किन्तु बाहर के वायुमंडल को प्रकंपित करने वाले ये बुरे विचारों के परमाणु उसके विचारों को भी बुरा बना देते हैं। यह एक गंभीर समस्या है। मंत्र-साधना के द्वारा इस समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है। मंत्र-साधना के द्वारा व्यक्ति अपनी ऊर्जा को इतना प्रबल बना देता है, आभामंडल को इतना शक्तिशाली बना देता है, अपने लेश्या के कवच को इतना सक्षम बना देता है कि आने वाले बुरे विचारों के परमाणु उसको प्रभावित नहीं कर पाते, उसके मस्तिष्क में प्रवेश नहीं कर पाते। यह संभव है।

मंत्र की साधना करने वाला व्यक्ति जानता है कि मंत्र की साधना में खतरा पैदा हो सकता है। यह अध्यात्म मंत्र की साधना की बात नहीं है। जो व्यक्ति और-और मंत्रों की साधना करते हैं, उनके समक्ष अनेक खतरे पैदा हो जाते हैं। इसलिए मंत्र-साधक सबसे पहले कवचीकरण करता है। वह अपने शरीर की सुरक्षा के लिए शरीर के एक-एक अवयव के लिए कवच बनाता है। वह वज्रपंजर बनाता है। एक-एक अवयव की प्रेक्षा करता है।

मंत्र की साधना करने वाला साधक ध्यान की मुद्रा में बैठकर, शरीर की सुरक्षा के लिए कवच का निर्माण करने के लिए कहता है—भगवान् ऋषभ मेरे सिर की रक्षा करें। भगवान् अजित मेरे भाल की रक्षा करें। भगवान् संभव और अभिनंदन मेरे दोनों कानों की रक्षा करें। इस प्रकार एक-एक अवयव की रक्षा का विन्यास कर वह साधक पूरे शरीर की रक्षा करता है, कवच तैयार करता है, वज्रपंजर बना लेता है। इस प्रकार वह सुरक्षित होकर मंत्र-साधना करने बैठता

अहंकार निःशेष और सर्वथा समाप्त। जहां अर्हत् है, वहां ममकार नहीं हो सकता। ममकार पदार्थ के प्रति होता है। अर्हत् चेतना का पिंड है, चेतना का स्वरूप है। चेतना के प्रति कोई ममकार नहीं हो सकता। ममकार पदार्थ के प्रति होता है। जहां चेतना का अनुभव जागता है, एक क्षण-भर के लिए भी चेतना की लौ का अनुभव होता है, वहां ममकार विलीन हो जाता है। पदार्थ का आकर्षण छूट जाता है। पदार्थ के पिंजड़े में जकड़ा हुआ आदमी अपने आपको स्वतंत्र अनुभव करता है। 'णमो अरहंताणं'—यह अहंकार और ममकार को विलीन करने वाला परम औषध है। यह एक मंत्र है। इसका जप किया जाता है। मंत्र का अर्थ होता है—गुप्त भाषा, गुप्त बात। मंत्र शब्द मंत्र् धातु से बना है। इसका अर्थ है—गुप्त बोलना, गुप्त अनुभव करना। यह गुप्तवाद है, रहस्यवाद है। जब तक रहस्य को नहीं समझा जाता, तब तक मंत्र का कोई अर्थ नहीं होता। जब तक चाभी हाथ नहीं लगती तब तक ताला नहीं खुलता। जब तक मंत्र की यह गूढ़ चाभी हस्तगत नहीं होती तब तक मंत्र के द्वारा अहंकार और ममकार का विलय नहीं किया जा सकता। यह सप्ताक्षरी मंत्र 'णमो अरहंताणं' हमारे सामने है। एक-एक अक्षर हमारे सामने है। न जाने कितने लोग इस मंत्र का जप जीवनभर करते हैं। वे अनुभव करते हैं कि जीवनभर जाप करने पर भी कषाय क्षीण नहीं हुए, अहंकार और ममकार क्षीण नहीं हुए। क्या केवल ध्वनि मात्र से, केवल उच्चारण मात्र से वैसा हो जाएगा? वह सब हो जाएगा जो होना चाहिए? मुझे यह सम्भव नहीं लगता। ध्वनि-विज्ञान ने यह बताया कि श्रव्य ध्वनि के द्वारा बहुत बड़ी घटना घटित नहीं होती। एक व्यक्ति तीन वर्ष तक श्रव्य ध्वनि करता रहे तो मात्र [illegible] ऊर्जा पैदा होती है कि एक प्याला पानी गर्म किया जा सके। तो क्या इस [illegible] उच्चारण के द्वारा कषाय क्षीण हो जाएगा जो इतने सूक्ष्म में बैठा है? क्या [illegible] जाएगा? निकल जाएगा? अपना स्थान छोड़ देगा? यह संभव नहीं लगता। यह कोरा उपचार है। यह हमें लक्ष्य तक नहीं पहुंचा पाएगा। इस बिन्दु पर [illegible] हमें [illegible] करना चाहिए। केवल उच्चारण ही पर्याप्त नहीं है। [illegible] ध्वनि का जाप भी पर्याप्त नहीं है। कोरा स्थूल जाप लाभप्रद नहीं होता। [illegible] ध्यान में नहीं बदल जाएगा तब तक उसके द्वारा वह प्राप्त नहीं [illegible]। [illegible] मंत्र का चमत्कार हमारे सामने नहीं आएगा। [illegible] है। जप और ध्यान के भेद को समाप्त करना है। [illegible]। इसका नाम है—[illegible] ध्यान, शब्द के आलम्बन से किया [illegible]।

[illegible] प्रकार है—भेद ध्यान और अभेद ध्यान। जहां भेद ध्यान है वहां [illegible] सम्बन्ध होता है। ध्यान करने [illegible] उच्चारण करता है तो [illegible] का

ध्वनित होने वाले शब्द के साथ यह सम्बन्ध स्थापित हो जाता है कि अमुक व्यक्ति ने 'णमो अरहंताणं' यह शब्द बोला है। किन्तु दोनों में तादात्म्य स्थापित नहीं होता। दोनों का भेद समाप्त नहीं होता। शब्द अलग रहता है। दोनों के बीच दूरी बनी रहती है।

जब यह भेद आगे की यात्रा कर अभेद तक पहुंच जाता है तब शब्द समाप्त हो जाता है। ध्यान करने वाले व्यक्ति का सम्बन्ध उस शब्द के अर्थ से जुड़ जाता है। 'णमो अरहंताणं' का अर्थ और ध्यान करने वाले व्यक्ति में एकीभाव स्थापित हो जाता है। दोनों में तादात्म्य स्थापित हो जाता है। फिर 'णमो अरहंताणं' का ध्यान करनेवाला और अर्हत् दो नहीं रहते, एक हो जाते हैं। अर्हत् की दूरी समाप्त हो जाती है। हमारा अर्हत् उसमें लीन हो जाता है और वह प्रकट हो जाता है। हमें इस प्रक्रिया को समझना है कि शब्द से अशब्द तक कैसे पहुंचें? इस प्रक्रिया को समझे बिना निर्विकल्प तक पहुंचने का हमारा स्वप्न पूरा नहीं हो सकता।

मंत्रशास्त्र के तीन स्तम्भ हैं—जल्प, संजल्प और विमर्श। णमो अरहंताणं' —यह जल्प है। इसे मंत्रशास्त्रीय भाषा में वैखरी कहा जाता है। जब 'णमो अरहंताणं' स्थूल उच्चारण से छूटकर मानसिक उच्चारण बन जाता है, मन में पहुंच जाता है, दूसरों को सुनाई नहीं देता, होठ भी नहीं हिलते, उच्चारण के जितने स्थान हैं उनमें कोई प्रकम्पन नहीं होता, उनमें कोई छेदन नहीं होता, केवल मन की धारणा के साथ 'णमो अरहंताणं', 'णमो अरहंताणं' बार-बार प्रकट होता रहता है, यह है संजल्प—अन्तर्जल्प। जल्प छूट गया। उच्चारण छूट गया। अंतर्वाणी बन गई। मौन हो गया, किन्तु अन्तर में वह चक्राकार रूप में चल रहा है। जल्प में शब्द और अर्थ का भेद होता है। शब्द अलग, अर्थ अलग। अग्नि शब्द अलग और अग्नि अर्थ अलग। जो अग्नि जलाती है, जो अग्नि प्रकाश देती है, जो अग्नि ताप देती है वह अग्नि चूल्हे में है और शब्द हमारे मुंह में है। वहां भेद होता है। जब अन्तर्जल्प में हम पहुंचते हैं वहां शब्द और अर्थ में भेद और अभेद दोनों हो जाते हैं। न पूरा भेद होता है और न पूरा अभेद होता है। वहां भेदाभेदात्मक स्थिति का निर्माण हो जाता है। उस स्थिति में अग्नि शब्द के उच्चारण के साथ दाह की क्रिया भी शुरू हो सकती है। दीपक राग जब गाई जाती है, दीए जल जाते हैं। मेघ राग गाने पर मेघ बरसने लग जाते हैं। शब्द और अर्थ की दूरी कम हो जाती है, समाप्त हो जाती है। अन्तर्जल्प की स्थिति में जो उच्चारण होता है, वहां पर घटना घटित होने लग जाती है। जैसे ही अग्नि का उच्चारण किया, दाह की क्रिया शुरू हो जाएगी, जलन की क्रिया शुरू हो जाएगी। पदार्थ जलने लग जाएगा। यह अनुग्रह और निग्रह क्या है? यह वरदान और अभिशाप क्या है? मंत्रविद् अनुग्रह भी करना जानता है और निग्रह भी करना जानता है। वह वरदान देना भी जानता है और अभिशाप देना भी जानता है। जो व्यक्ति इस स्थिति तक

पहुंच जाता है उसके मुंह से जो भी शब्द निकला, वह शब्द अर्थ की दूरी को समाप्त कर अर्थ की घटना को घटित करने लग जाता है। वही क्रिया होने लग जाती है। 'तथास्तु' कहने की जरूरत है। 'तथास्तु' कहते ही जलाना है तो सामने वाला व्यक्ति जलने लग जाएगा। किसी को मिटाना है तो वह मिटने लग जाएगा, समाप्त होने लग जाएगा।

प्राचीन घटना है। वैश्यायन बाल-तपस्वी ने आजीवक सम्प्रदाय के प्रवर्तक गोशालक पर तेजोलेश्या का प्रयोग किया। उसके मुंह से आग के गोले निकलने लगे और गोशालक का शरीर जलने लगा। महावीर ने देखा। गोशालक उनके साथ था। उन्होंने तत्काल शीतल लेश्या का प्रयोग किया। अग्नि शांत हो गई। तेजोलेश्या प्रतिहत हो गई। अन्तर्जल्प की स्थिति में शब्द और अर्थ की दूरी समाप्त हो जाती है।

तीसरी स्थिति है अभेद की। वहां शब्द बिलकुल छूट जाता है, केवल अर्थ रह जाता है। मंत्रशास्त्रीय भाषा में पहली और दूसरी स्थिति को 'मध्यमा' कहा जाता है और इस तीसरी स्थिति को 'पश्यन्ती' कहते हैं। यहां शब्द छूट गया, अर्थ रह गया। ध्यान करने वाले व्यक्ति का अर्थ के साथ तादात्म्य जुड़ गया, एकीभाव हो गया। उस एकीभाव की स्थिति में ध्यान करने वाला और ध्येय दो नहीं होते, वह व्यक्ति स्वयं ध्येय के रूप में बदल जाता है। ध्येय समाहित हो जाता है। सर्वथा अभेद की स्थिति प्राप्त हो जाती है। कोई भेद नहीं रहता। सैद्धान्तिक परिभाषा में पहली स्थिति है वाक्, दूसरी स्थिति है वाक् का क्षयोपशम, वाक् की गति और तीसरी स्थिति है ज्ञान का उपयोग। जब वाक् समाप्त हो जाती है तब अभेद की स्थिति स्थापित होती है। इस स्थिति में मंत्र का साक्षात्कार होता है, मंत्र का देवता प्रकट होता है। वह देवता बाहर से नहीं आता। हम इस भूल को सुधारें कि कोई देवता बाहर से आता है। अभेद की स्थिति का होना ही मंत्र का साक्षात्कार है, मंत्र का देवता है। यह है मंत्र का चैतन्य या मंत्र का जागरण। हमारे तैजस शरीर की स्थिति इतनी शक्तिशाली बन जाती है, हमारे विद्युत शरीर की स्थिति इतनी तेजस्वी बन जाती है कि हम जो चाहते हैं, वह [illegible] हो जाता है। इस स्थिति में 'णमो अरहंताणं' जल्प से छूटकर अंतर्जल्प में चला जाता है, अंतर्जल्प से छूटकर मानसिक स्थिति में चला जाता है और मानसिक स्थिति से छूटकर अभेद की स्थिति में चला जाता है। उस स्थिति में 'णमो अरहंताणं' [illegible] हो जाता है और फिर उसके द्वारा जो घटित होना चाहिए, [illegible] जाता है। हम शक्तियों को पार न करें, [illegible] भूमिका [illegible] क्योंकि हमारी आंखों में देखने की [illegible] आंखों में देखने की शक्ति है। वह समूचे विश्व को [illegible] समूचे विश्व को नहीं देख

सकते। *हम सीमा को पार करें, अवरोध को पार करें और आगे बढ़ें तो इन आंखों* से समूचे विश्व को देख सकते हैं। किन्तु एक स्थान पर बैठकर कितना ही प्रयत्न करें, पचास वर्ष तक आंखों को फाड़-फाड़ बैठे रहें तो इस भीत के परे की वस्तु भी नहीं दीखेगी। उसे देखने के लिए हमें इस स्थान से चलकर भींत के परे जाना होगा। हमें सीमाओं को पार करना होगा। भूमिकाओं का विकास करना होगा। आगे बढ़ना होगा। केवल ध्वनि पर अटक जाते हैं, तो मंत्र की शक्ति पर सन्देह होने लग जाता है। व्यक्ति सोचता है—इतने वर्ष बीत गए, इतनी मालाएं जपी, फिर भी कुछ नहीं हुआ। सुना तो था कि मंत्र बहुत शक्तिशाली है, पर उसका फल कुछ भी नहीं मिला। ऐसा हो सकता है कि या तो मंत्र-निर्माताओं ने कहीं कोई भूल की है, या फिर उसका महत्त्व बताने वालों ने कहीं कोई त्रुटि की है या जपने में कहीं कोई त्रुटि रही है। तीनों में से किसी न किसी की भूल अवश्य ही *होनी चाहिए। मंत्रद्रष्टा ऋषि की भूल हो, मंत्रदाता गुरु की भूल हो या मंत्र जपने* वाले व्यक्ति की भूल हो—तीनों में से एक की भूल अवश्य ही रही है।

मंत्रद्रष्टा ऋषि ने भूल नहीं की, क्योंकि उन्होंने बहुत गहरे में जाकर, बहुत सूक्ष्म में जाकर मंत्रों का निर्माण किया है। मंत्रस्रष्टा में प्रकृति का पूरा ज्ञान, पौद्गलिक परिवर्तनों का पूरा ज्ञान और मातृका का पूरा ज्ञान होना आवश्यक है। जब यह होता है तब कोई मुनि मंत्रस्रष्टा बनता है, मंत्रों का निर्माण करता है, अन्यथा उसका कोई मंत्र नहीं बन सकता। ऐसे व्यक्ति की भूल संभव नहीं है। अब भूल की ज्यादा संभावना दो व्यक्तियों की रह जाती है—मंत्रदाता की भूल या मंत्र जपने वाले की भूल। इसकी चर्चा में जाना अपेक्षित नहीं है। एक बात स्पष्ट ध्यान में रहनी चाहिए कि मंत्र का जाप करने वाला साधक ध्वनि को ही मंत्र की समाप्ति न मान बैठे। वह अगली भूमिकाओं को प्राप्त करने का प्रयत्न करे। केवल तलघर में ही न बैठा रहे। मकान की ऊपरी मंजिलों तक जाने का प्रयास करे। केवल तलहटी पर ही न रुके, शिखर पर चढ़ने का प्रयत्न करे। जब हमारा ऊर्ध्व आरोहण होगा तब सारे पर्याय अपने-आप उद्घाटित होते चले *जाएंगे। जो दिशाएं बंद हैं, जो दरवाजे और खिड़कियां बन्द हैं सब अपने आप* खुलती चली जाएंगी। हमें तलहटी से चलना होगा। तलहटी को पार कर हम शिखर तक पहुंच सकते हैं। शक्तिकेन्द्र है तलहटी और ज्ञानकेन्द्र है शिखर। इससे ऊंचा कोई दूसरा शिखर नहीं है। *हिमालय की यह सबसे ऊंची चोटी है। हमें* शक्तिकेन्द्र से यात्रा प्रारंभ करनी है और ज्ञानकेन्द्र तक पहुंचना है। लगता है कि यात्रा बहुत छोटी है, केवल एक-दो फुट की यात्रा। शक्तिकेन्द्र से ज्ञानकेन्द्र की बड़ी दूरी नहीं है। थोड़ी दूरी है। एक-दो डग भरने की जरूरत है। यात्रा संपन्न। यह छोटी यात्रा। छोटा भी कभी-कभी बड़ा खतरनाक होता है। बड़ा जितना खतरनाक नहीं होता, उतना छोटा खतरनाक होता है। कभी-कभी छोटी बात

कुछ भी नहीं, सब कुछ अपना। उस दूकानदार को हमेशा भय रहता है जो उधार ली हुई धनराशि से अपना व्यापार चलाता है। जो अपनी धनराशि से अपना व्यापार चलाता है उसे कोई भय नहीं होता, कोई खतरा नहीं होता। अर्हत् अपने ज्ञान, दर्शन, आनन्द और शक्ति की चतुष्टयी का नाम है। जब अर्हत् की चेतना जाग जाती है फिर भय समाप्त हो जाता है। सर्वत्र अभय की चेतना जाग जाती है।

'णमो अरहंताणं' है अर्हत् के प्रति नमन, अर्हत् के प्रति समर्पण, अर्हत् के साथ तादात्म्य, अर्हत् के साथ एकता की अनुभूति। यह अनुभूति अभय पैदा करती है। उसका सहारा लेकर हम निर्विकल्प स्थिति में पहुंचते हैं, तब भी हमें कोई खतरा नहीं होता। लोग यह बहुत बड़ा खतरा मानते हैं कि जब हम निर्विकल्प स्थिति में जाते हैं तो सारी कल्पनाएं, सारे विकल्प, सारी योजनाएं छूट जाती हैं। बहुत बड़ा खतरा लगता है। शरीर छूट जाता है, शरीर के प्रति आसक्ति छूट जाती है। पदार्थ छूट जाता है। व्यवहार में लोग समझते हैं कि आदमी निकम्मा हो गया। अब यह हमारे काम का नहीं रहा। बहुत बड़ा भय लगता है, खतरा लगता है। किन्तु जिस व्यक्ति को एक क्षण के लिए भी निर्विकल्प दशा या निर्विकल्प चेतना का अनुभव हो जाता है, फिर वह उस स्थिति से कभी मुड़ नहीं सकता। वहां पहुंचने वाला व्यक्ति यह अनुभव करता है—यह अपूर्व आनन्द कहां से बरस रहा है। आदमी को खाने से आनन्द मिलता है, रूप देखने से आनन्द मिलता है, अच्छा संगीत सुनने से आनन्द मिलता है, अच्छे स्पर्श से आनन्द मिलता है। जब हमारी इन्द्रियों के पांचों विषय अनुकूल होते हैं तब सुख का, आनन्द का अनुभव होता है, किन्तु जहां न शब्द है, न रूप है, न गंध है, न रस है और न स्पर्श है, वहां भी अनुपम आनन्द का अनुभव होता है, अपूर्व सुख मिलता है। प्रशंसा मिलती है आदमी सुख का अनुभव करता है। उसे तृप्ति मिलती है। पर कोई प्रशंसा नहीं, कोई [illegible] नहीं, फिर भी आनन्द की अनुभूति—यह है वास्तविक स्थिति। जब साधक दर्शनानन्द के जागरण की स्थिति में पहुंच जाता है, जब उसके तेजो-लेश्या के स्पंदन जाग जाते हैं तब एक दिव्य आनन्द की अनुभूति होने लगती है।

शिविर में हमने कुछेक प्रयोग कराए। जिन व्यक्तियों ने तेजोलेश्या के स्पंदनों का अनुभव किया, वे पहले पूरा आधा घंटा भी नहीं बैठ पाते थे, अब छह-छह घंटा [illegible] कोई कठिनाई नहीं होती। कभी-कभी ऐसी स्थिति बनती है कि [illegible] के लिए दूसरा प्रयोग कराना पड़ता है। जब वे [illegible] और पदार्थ से होने वाली सुख की सीमा [illegible] होती है और आन्तरिक परिणामों [illegible] है, जिससे पदार्थ से होने वाले सुख से कोई [illegible] अनुभव, अन्तर से उपजने वाला अनुभव,

यह भीतर से झरने वाला सुख का निर्झर ऐसा प्रवाहित होता है कि उसके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता। वाणी वहां मौन हो जाती है, वह केवल अनुभव का विषय है। अनुभव की बात सूक्ष्म होती है। जब वह वाक् में आती है तब स्थूल बन जाती है। साधना करने वाला स्थूल से चलता है और सूक्ष्म तक पहुंच जाता है। वह शब्द से चलता है और अनुभव तक पहुंचता है। जिस व्यक्ति ने अनुभव कर लिया, वह अनुभव से चलता है और शब्द तक पहुंचता है। इन दोनों में यह अन्तर रहता है। हमारी वाणी की उत्पत्ति का क्रम यह है—पहले ज्ञान बनता है, ज्ञान में स्पंदन बनता है, फिर वह ज्ञान में प्रकट होता है। जो लब्धि है वह उपयोग में आती है। उससे आगे वह अव्यक्त वाणी में जाती है और फिर व्यक्त वाणी में उतरती है। यह है वाणी की उत्पत्ति का क्रम। साधना का क्रम। साधना का क्रम उससे उल्टा है। साधक पहले स्थूल वाणी में जाता है फिर वह अन्तर् वाणी में जाता है। वह जल्प से अन्तर्जल्प में जाता है। वहां से ज्ञान के उपयोग में जाता है। और वहां से मूल ज्ञान के स्रोत तक पहुंचता है। एक क्रम है सूक्ष्म से स्थूल की ओर जाने का, अन्दर से बाहर की ओर जाने का। एक क्रम है स्थूल से सूक्ष्म की ओर जाने का, बाहर से भीतर की ओर जाने का। यह साधना का क्रम है। यह अन्तर् यात्रा का क्रम है। अन्तर्यात्रा के रहस्य को समझ लेने पर ही यह संभावना की जा सकती है कि 'णमो अरहंताणं' से कषाय क्षीण हो सकते हैं। हमारे राग-द्वेष क्षीण हो सकते हैं, कर्म क्षीण हो सकते हैं, संस्कार क्षीण हो सकते हैं, शुद्ध चेतना का अनुभव हो सकता है और शुद्ध चेतना की उच्चतम भूमिका में हमारा आरोहण हो सकता है।

५

महामंत्र

- यह इसलिए महामंत्र है कि
    1. इससे अधोमुखी बुद्धि ऊर्ध्वमुखी होती है।
    2. तृप्ति नहीं, इच्छा का अभाव होता है।
    3. सुख-दुःख की कल्पना में परिवर्तन होता है।
    4. मार्ग उपलब्ध होता है।
    5. चेतना, आनन्द और शक्ति का समन्वित विकास होता है।

हम कुछ दिनों से एक महासागर में अवगाहन कर रहे हैं, उसमें डुबकियां ले रहे हैं। यह सागर ही नहीं महासागर है। कितनी ही डुबकियां लें, कितना ही अवगाहन करें, इसका आर-पार पाना बहुत ही कठिन है। इसकी गहराई को मापना असम्भव है। इसकी गहराई समूचे श्रुतसागर की गहराई है। कहा जाता है— नमस्कार महामंत्र चौदह पूर्वों का सार है। विश्व की सारी शाब्दिक विशिष्टता, ज्ञानराशि चौदह पूर्वों में समा जाती है। इतने बड़े समुद्र का अवगाहन करना कोई सहज बात नहीं है। इसीलिए इस महासागर को महामंत्र कहा जाता है। यह मंत्र ही नहीं, महामंत्र है। यह महामंत्र क्यों है, इसे समझना है। नमस्कार महामंत्र इस- [illegible] का जागरण करता है। हमारी अध्यात्म यात्रा इससे संपन्न [illegible] है। [illegible] नहीं है। कामनापूर्ति के अनेक प्रकार के [illegible] मंत्र, [illegible], रोग निवारण मंत्र, कारागृह-मुक्ति [illegible] के लिए औषधियों का निर्माण हुआ, वैसे ही [illegible] हुई। जितनी बीमारियां उतनी ही औष- [illegible], उतने ही मंत्र हैं। नमस्कार महामंत्र

कामनापूर्ति का मंत्र नहीं है, इच्छापूर्ति का मंत्र नहीं है, किन्तु यह वह मंत्र है जो कामना को समाप्त कर सकता है, इच्छा को मिटा सकता है। बहुत बड़ा अन्तर है। एक मंत्र होता है, कामना की पूर्ति करने वाला और एक मंत्र होता है, कामना मिटाने वाला। एक मंत्र होता है, इच्छा की पूर्ति करने वाला और एक मंत्र होता है, इच्छा को मिटाने वाला। दोनों में बहुत बड़ा अन्तर है। कामनापूर्ति और इच्छापूर्ति का स्तर बहुत नीचे रह जाता है। जब मनुष्य की ऊर्ध्व चेतना जागृत होती है तब उसे यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि संसार की सबसे बड़ी उपलब्धि वही है, जिससे कामना और इच्छा का अभाव हो सके। कामना की पूर्ति और कामना का अभाव—दो बातें हैं। दोनों में बहुत दूरी है।

मुझे एक कहानी याद आ रही है। बहुत ही मार्मिक है। एक व्यक्ति सन्यासी के पास जाकर बोला—'बाबा! बहुत गरीब हूं, कुछ दो।' सन्यासी ने कहा—'मैं अकिंचन हूं, तुम्हें क्या दे सकता हूं? मेरे पास अब कुछ भी नहीं है।'

लोग उन्हीं से मांगते हैं जिनके पास कुछ भी नहीं है। लोग उन्हीं के पीछे पड़ते हैं जो अकिंचन होते हैं। दुनिया की प्रकृति ही ऐसी है कि मनुष्य उनके पास नहीं जाते जिनके पास होता है, उनके पास जाते हैं जिनके पास नहीं होता।

सन्यासी ने बहुत नकारा, पर वह नहीं माना। तब बाबा ने कहा—'जाओ नदी के किनारे एक पारस का टुकड़ा है उसे ले जाओ। मैंने उसे फेंका है। उस टुकड़े से लोहा सोना बनता है।'

वह दौड़ा-दौड़ा नदी के किनारे गया। पारस का टुकड़ा उठा लाया। बाबा को नमस्कार कर घर की ओर चला। सौ कदम गया होगा कि मन में विकल्प उठा और वह उन्हीं पैरों सन्यासी के पास आकर बोला—'बाबा! यह लो तुम्हारा पारस। मुझे नहीं चाहिए।' सन्यासी ने पूछा—'क्यों?' यह कैसा परिवर्तन! जो धन के लिए ललचा रहा था, वह पारस जैसे महाधन को ठुकरा रहा है, धन के महास्रोत को ठुकरा रहा है। क्या हो गया दो-चार क्षणों में ही। उसने कहा—'बाबा! मुझे वह चाहिए जिसे पाकर तुमने पारस को ठुकराया है। पारस से भी वह कीमती है, वह मुझे दो।'

जब व्यक्ति में अन्तर् की चेतना जाग जाती है तब वह कामनापूर्ति के पीछे नहीं दौड़ता, तब वह इच्छापूर्ति का प्रयत्न नहीं करता। वह उस बात के पीछे दौड़ता है, वह उस मंत्र की खोज करता है जो कामना को काट दे, उसके स्रोत को ही सुखा दे। उसे वह मंत्र चाहिए जो इच्छा का अभाव पैदा कर दे, इच्छा के स्रोत को नष्ट कर दे। नमस्कार महामंत्र इसीलिए है कि उससे इच्छा की पूर्ति नहीं होती, किन्तु इच्छा का स्रोत ही सूख जाता है। जहां सारी इच्छाएं समाप्त, सारी कामनाएं समाप्त, जहां व्यक्ति निरीह और निष्काम बन जाता है और कामना के धरातल से ऊपर उठ जाता है, वहां उसका अर्हत् स्वरूप जागता है।

महामंत्र का प्रयोजन है और इसीलिए यह केवल मंत्र ही नहीं, महामंत्र है।

नमस्कार महामंत्र से भी ऐहिक कामनाएं पूरी होती हैं, किन्तु यह उसका मूल उद्देश्य नहीं है, मूल प्रयोजन नहीं है। उसकी संरचना केवल अध्यात्म जागरण के लिए हुई है, कामनाओं की समाप्ति के लिए हुई है। यह एक तथ्य है कि जहां बड़ी उपलब्धि होती है, वहां आनुषंगिक रूप में अनेक छोटी उपलब्धियां भी अपने-आप हो जाती हैं। छोटी उपलब्धि में बड़ी उपलब्धि नहीं होती, किन्तु बड़ी उपलब्धि में छोटी उपलब्धि सहज हो जाती है। कोई व्यक्ति सरस्वती के मंत्र की आराधना करता है तो उसके ज्ञान बढ़ेगा। कोई व्यक्ति लक्ष्मी के मंत्र की आराधना करता है तो उसके धन बढ़ेगा। किन्तु अध्यात्म का जागरण या आत्मा का उन्नयन नहीं होगा, क्योंकि छोटी उपलब्धि के साथ बड़ी उपलब्धि नहीं मिलती। जो व्यक्ति बड़ी उपलब्धि के लिए चलता है, रास्ते में उसे छोटी-छोटी अनेक उपलब्धियां प्राप्त हो जाती हैं।

राजा के चार रानियां थीं। राजा विदेश गया हुआ था। जब उसके लौटने का समय हुआ तब रानियों ने विदेश से कुछ वस्तुएं मंगाईं। एक रानी ने हार, दूसरी ने कंगन, तीसरी ने नूपुर मंगाया। पत्र लिख दिए। चौथी ने अपने पत्र में लिखा—'मुझे आपके सिवाय कुछ नहीं चाहिए।' राजा आया। तीनों रानियों को अपनी-अपनी वस्तुएं दीं और चौथी रानी को सब कुछ दे दिया। उसने कहा—किसीको हार की, किसीको कंगन की और किसी को नूपुर की जरूरत थी। मैंने उनकी जरूरत पूरी कर दी। चौथी रानी को मेरी जरूरत थी। उसे मैं मिल गया। साथ-साथ मेरा जो कुछ है वह भी उसे सहज ही मिल गया।

व्यक्ति बहुत छोटी-छोटी मांगें करता है। उसे छोटा मिलता है। किन्तु जब मांग बहुत बड़ी होती है तो छोटी मांगें स्वयं मिल जाती हैं।

यह नमस्कार मंत्र महामंत्र इसलिए है कि इसके साथ कोई मांग जुड़ी हुई नहीं है। इसके पीछे कोई कामना नहीं है। इसके साथ केवल जुड़ा हुआ है—आत्मा का जागरण, चैतन्य का जागरण, आत्मा के स्वरूप का उद्घाटन और आत्मा के आवरणों का [illegible]। जब इतनी बड़ी मांग होती है, जब आत्म-साक्षात्कार और परमात्मा बनने की मांग पूरी होती है तब सहवर्ती अनेक उपलब्धियां स्वयं आ जाती हैं। जिस व्यक्ति को परमात्मा उपलब्ध हो गया, जिस व्यक्ति को आत्म-साक्षात्कार उपलब्ध हो गया, उसे सब कुछ उपलब्ध हो गया। कुछ भी शेष नहीं रहा।

नमस्कार महामंत्र के साथ कोई छोटी मांग जुड़ी हुई नहीं है। इसके साथ जुड़ा हुआ है [illegible] चैतन्य का जागरण। सोया हुआ चैतन्य जाग जाए। सोया हुआ [illegible] जाग जाए। अपना परमात्मा जाग जाए। जहां इतनी [illegible] का [illegible] बन जाता है।

नमस्कार महामंत्र के पांचों पदों में पांच परम आत्माएं जुड़ी हुई हैं। कोई अल्प शक्ति जुड़ी हुई नहीं है। विश्व की पांच महाशक्तियां इसके साथ जुड़ी हुई है। केवल आत्मा और केवल परमात्मा इसके साथ जुड़ा हुआ है। अर्हत् परमात्मा है। सिद्ध परमात्मा है। आचार की गंगा में अवगाहन करने वाले और ऐसे नंदनवन में रहने वाले जिनके आसपास सौरभ फूटता है, वे परम आत्मा का जागरण करने वाले आचार्य इसके साथ जुड़े हुए हैं। वे उपाध्याय इसके साथ जुड़े हुए हैं जो समग्र श्रुतराशि का अवगाहन कर ज्ञान का आलोक विकीर्ण करते हैं। इसके साथ जुड़े हुए हैं वे साधु या साधक जो आत्मा के समस्त आवरणों को दूर कर, परमात्मा स साक्षात्कार करने का सतत उपक्रम कर रहे हैं। विश्व की सारी पवित्र आत्माए किसी संप्रदाय की नहीं, किसी धर्म विशेष की नहीं, किसी जाति की नहीं, सबकी हैं, वे सब इसके साथ जुड़ी हुई है।

नमस्कार के महामंत्र होने का दूसरा हेतु यह है कि यह एक मार्ग है। णमो अरहंताणं'—अर्हत् मार्ग होता है।

मैं दूसरा प्रयोग यह करवाना चाहता हूं कि अर्हत् का ध्यान पैरों पर किया जाए। लोगों को लगेगा कि अर्हत् का स्थान तो सिर है, पैरों पर उनका ध्यान क्यों? यह प्रश्न है। इसका मुझे ज्ञान था। मेरे पास इसका समाधान भी है। मैंने योग साधना से जो कुछ अनुभव किया, आज के वैज्ञानिक अनुसंधानों को पढ़ा-सुना, एक्यूपंक्चर चिकित्सा पद्धति में खोजे गए सात सौ चैतन्य केन्द्रों के विषय में पढ़ा, योग तथा आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट चैतन्य केन्द्रों का अनुभव किया और आज के शरीरशास्त्रियों द्वारा खोजे गए ग्रन्थियों का सिद्धांत और स्वरूप देखा तो ज्ञात हुआ कि शरीर का कण-कण पवित्र है। पैर का अंगूठा भी उतना ही पवित्र है जितना पवित्र सिर का शिखर है। कोई अन्तर नहीं है। जब हम कहते हैं—हिमालय बहुत बड़ा है तो उसकी तलहटी भी बड़ी है और शिखर भी बड़ा है। गंगा यदि पवित्र है तो उसका प्रत्येक कण पवित्र है। उसकी प्रत्येक बूंद पवित्र है। उसकी प्रत्येक धारा पवित्र है। गंगा यदि पवित्र है तो जहां से वह उत्पन्न होती है ह भी पवित्र है और जहां वह प्रवाहित होती है वह भी पवित्र है। हमारे शरीर ा कण-कण पवित्र है। सिर का कोई भाग अपवित्र नहीं है। सारा पवित्र है। ारे सिर में यदि चैतन्य केन्द्र हैं हमारे शरीर में पिच्यूटरी और पिनियल ण्डस् हैं तो हमारे हाथों-पैरों में भी वैसा ही है। जो ग्रन्थियां सिर में हैं वे हाथों- में भी हैं। पैरों में अनेक चैतन्य केन्द्र हैं। प्राचीन काल में यह प्रचलित था कि ध्यानस्थ व्यक्ति को जगाना हो तो उसके पैर के अंगूठे को धीरे से दबाना । वह समाधिस्थ व्यक्ति जाग जाता। उसकी समाधि टूट जाती।। यह य प्राचीन ग्रन्थों में प्राप्त है। इसका रहस्य ज्ञात नहीं हो रहा था। किन्तु क्चर पद्धति के अध्ययन से यह रहस्य स्पष्ट हो गया। पिच्यूटरी का जो

सेंटर है, उस जैसा केन्द्र भी अंगूठे में है। यह रहस्य बहुत लाभदायी हुआ।

जब ध्यान की गहराई होती है, व्यक्ति दर्शनकेन्द्र की गहराइयों में चला जाता है और समाधिस्थ हो जाता है। दर्शनकेन्द्र समाधि का बहुत बड़ा केन्द्र है। इसकी अवस्थिति भृकुटियों के बीच है। जो व्यक्ति इस केन्द्र में समाधिस्थ हो जाता है उसके जागरण का उपाय यह है कि उसके पैर के अंगूठे को दबाना। वह दबाव दर्शन-केन्द्र तक पहुंच जाएगा और उस व्यक्ति की समाधि टूट जाएगी। हमारे पैर भी उतने ही पवित्र हैं जितना पवित्र है हमारा सिर। हम पैरों को अपवित्र क्यों मानें? हमारी गति का माध्यम क्या है? गति का एकमात्र माध्यम हैं पैरों के पंजे। यदि पंजे नहीं टिकते हैं तो गति नहीं हो सकती। अर्हत् की आराधना पैरों पर भी की जाती है। जिस प्रकार पैर गति देने वाले हैं उसी प्रकार अर्हत् समूची अध्यात्म-यात्रा को गति देने वाले हैं। अर्हत् मार्ग हैं। अर्हत् पैर हैं। अर्हत् गति हैं और गति को बढ़ाने वाले हैं।

नमस्कार महामंत्र में समूचा मार्ग समाया हुआ है। मोक्ष-मार्ग के चार चरण हैं—सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यग् चारित्र और सम्यग् तप। अर्हत् इस चतुष्टयी के समन्वित रूप हैं। वे मार्ग हैं। अर्हत् का स्वरूप है—अनन्त ज्ञान, अनंत दर्शन, अनन्त चारित्र अर्थात् अनन्त आनन्द और अनन्त शक्ति। चारित्र और आनन्द एक हैं। साधना-काल में जो चारित्र होता है वह सिद्धि-काल में आनन्द बन जाता है। दोनों में कोई अन्तर नहीं है। यही है अर्हत् का स्वरूप और यही है मोक्ष का मार्ग। इस नमस्कार महामंत्र में मार्ग का रहस्य छिपा हुआ है। हमारी अध्यात्म-यात्रा का समूचा मार्ग छिपा हुआ है। यह मंत्र मार्गदाता है, इसलिए यह महामंत्र की कोटि में आता है।

नमस्कार मंत्र का महामंत्र होने का तीसरा हेतु है—दुःखमुक्ति का सामर्थ्य। आदमी का सारा पुरुषार्थ दुःख को मिटाने और सुख को पाने के लिए होता है। जितना पुरुषार्थ, जितनी प्रवृत्ति, जितनी चेष्टा और जितनी सक्रियता है, वह दो बातों से जुड़ी हुई है। पहली बात है दुःख को मिटाना और दूसरी बात है सुख प्राप्त करना।

[illegible] से पूछा जाता है कि इतना श्रम क्यों? वह कहता है—[illegible] आए। अपना दुःख भी मिटे और दुनिया का दुःख भी मिटे। कृषक [illegible] —खेती क्यों करते हो? वह कहता है—भूख का दुःख मिटे। [illegible]। उनका भी दुःख मिट जाए। प्रत्येक प्रवृत्ति के पीछे ये दो [illegible] दुःख का [illegible] और सुख की उपलब्धि, दुःख की निवृत्ति और सुख [illegible] दुःख-सुख की सारी कल्पना भी ही [illegible] परिणामों में जाते हैं, तब मनःस्थिति कुछ [illegible] बदल जाती है।

ऐसा लगने लगता है कि जिसको हमने सुख मान रखा था, जिसको हमने दुःख मान रखा था, वह सुख न सुख है और वह दुःख न दुःख है। सुख-दुःख की भ्रान्ति मिट जाती है, नींद टूट जाती है और आदमी जाग जाता है। स्वप्न समाप्त हो जाता है। स्वप्न का दर्शन जागने पर बदल जाता है। जागने वाला व्यक्ति स्वप्न की अवधारणा को यथार्थ नहीं मानता। स्वप्न की अवधारणा जागने की अवधारणा से भिन्न होती है। सुख-दुःख की कल्पना में परिवर्तन हो जाता है।

खुजलाने को कष्टप्रद माना जाता है। खुजलाना कितना आनन्द देने वाला है यह उस व्यक्ति से पूछो जो खुजली के रोग से पीड़ित है। बुद्धि का विपर्यय, मति का विपर्यय और चिन्तन का इतना विपर्यय हो जाता है कि व्यक्ति जो नहीं है उसे मान लेता है और जो है उसे नहीं मानता। ठीक है, आदमी ने पदार्थ में सुख मान रखा है। खाने में सुख होता है, पीने में सुख होता है, वस्तुओं के भोग में सुख होता है। भूख लगी है और यदि खाना नहीं मिलता है तो दुःख होता है। प्यास लगी है और यदि पानी नहीं मिलता है तो दुःख होता है। जो चाहिए वह नहीं मिलता है तो दुःख होता है। मलेरिया ज्वर में कुनैन नहीं मिलता है तो दुःख होता है। क्या कुनैन की गोलियां खाना सुख है? कोई सुख नहीं है। हम गहरे में उतर कर देखें। ज्ञात होगा कि भूख स्वयं एक बीमारी है। संस्कृत में इसका नाम है—जठराग्निपीड़ा, जठर की अग्नि से होने वाली पीड़ा। भला बीमारी भी कभी सुख होती है? तो क्या बीमारी के लिए कोई दवा लेना सुख की बात है? खाने का अर्थ है उस जठर की अग्नि से उत्पन्न पीड़ा को बुझाना। खाना भी बीमारी है। हमारी मान्यता ऐसी हो गई है कि यदा-कदा होने वाली पीड़ा को हम बीमारी मान लेते हैं और रोज होने वाली पीड़ा को हम बीमारी नहीं मानते। और रोज होने वाली पीड़ा को बीमारी नहीं, सुख मानते हैं। भूख बीमारी है और खाना भी बीमारी है।

एक बात है। बुरी चीज छूटने पर आदमी को सुख ही होता है, ऐसा नहीं है। बुरी चीज छूटने पर आदमी को दुःख भी होता है। पेट में मल संचित है। मल विजातीय द्रव्य है। जब वह निकाला जाता है तो एक बार आदमी कमजोरी और थकान अनुभव करता है। खराबी का निष्कासन हो रहा है, पर आदमी कमजोर होता जा रहा है। इसका कारण स्पष्ट है। जिसको वर्षों से पाल रखा है, उससे छुटकारा पाना कोई नहीं चाहता। संस्कृत में एक नीतिवाक्य है—'विषवृक्षोऽपि संवर्ध्य स्वयं छेत्तुं न साम्प्रतम्'—अपने हाथों से बढ़े हुए विष-वृक्ष को काटना उचित नहीं है। यह नीतिसूत्र इसीलिए चला होगा। आदमी दुःख के वृक्ष को पालता चला जा रहा है। उसे उखाड़ फेंकने की बात वह सोचता ही नहीं। कितना विपर्यय! कितना आश्चर्य! हम बीमारी की दवा लेते हैं और उसे सुख मान लेते हैं। किन्तु यथार्थ में सुख की चेतना तब जागती है जब आदमी नमस्कार मंत्र की आराधना में लगता है। वह बाहर की यात्रा से विरत होकर अन्तर् की यात्रा

प्रारम्भ करता है तब सुख की चेतना जागृत होती है। इस जागरण में नए-नए अनुभव होने लगते हैं जो पहले कभी नहीं हुए थे। उस समय अलौकिक आनन्द का अनुभव होता है। उसे लोकोत्तर सुख की अनुभूति होती है जो पदार्थ से कभी नहीं हो सकती।

जब हम नमस्कार महामंत्र की आराधना करते समय अन्तःकरण की गहराइयों में उतरते हैं और उसको साक्षात् करते हैं तब अलौकिक आनन्द की रश्मि फूट पड़ती है, सारा मार्ग आलोक से भर जाता है और तब सुख-दुख की सारी धारणा बदल जाती है। मनुष्य सदा यह मानता रहा है कि पदार्थ से ही इन्द्रियों को और मन को सुख मिलता है। यह भ्रान्ति टूट जाती है। यह मूर्च्छा समाप्त हो जाती है। उसे भान हो जाता है कि पदार्थ से ही सुख नहीं मिलता, अपने अन्तःकरण से भी सुख मिलता है। पदार्थ से मिलने वाला कोई भी सुख ऐसा नहीं है जिसके साथ दुःख जुड़ा हुआ न हो। किन्तु इस आत्मानुभव के साथ, आत्मा से फूटने वाली सुख-रश्मियों के साथ कोई दुःख जुड़ा हुआ नहीं है। यह केवल सुख है, विशुद्ध और परिपूर्ण सुख है। इसमें कोई मिश्रण नहीं है।

आप अनुभव करें कि जब उत्तेजना आती है तब गाली देने में कितना आनन्द आता है। ऐसा लगता है मानो स्वर्ग का राज्य ही लूट लिया गाली देकर। किन्तु जब उत्तेजना का पारा उतरता है तब मन पश्चात्ताप से भर जाता है। मन ग्लानि से भर जाता है। इन्द्रिय-संवेदनाओं से होने वाली घटनाओं के प्रति प्रारंभ में रस [illegible] होता है और हम उन्हें कर डालते हैं। उनके घटित होने पर मन में पश्चात्ताप होता है और प्रत्येक व्यक्ति यह सोचता है कि ऐसा नहीं करता तो अच्छा होता। करते समय सुख का अनुभव होता है और करने के बाद दुःख होता है। यह ऐसा सुख है जिसके साथ अनुताप जुड़ा हुआ है। पुद्गल से प्राप्त होने वाला ऐसा एक भी सुख नहीं है जिसके साथ दुःख की परंपरा जुड़ी हुई न हो, संताप की परम्परा [illegible] न हो।

ध्यान करने वाले किसी भी व्यक्ति ने यह नहीं कहा कि अच्छा होता यदि मैं ध्यान नहीं करता। इसका कारण है कि जो सुखानुभूति ध्यान से प्रसूत होती है, वह [illegible] देती है। ध्यान अध्यात्म की यात्रा है। इसमें दूसरे की कसौटी, दूसरे का मानदंड और दूसरे का तराजू काम नहीं देता। अपनी कसौटी, अपना मानदंड और अपनी तुला ही काम देती है। जहां अपना अनुभव जाग जाता है, अपनी [illegible] स्वयं में कसौटी होना है, स्वयं ही तुला होता है। [illegible] पुरानी धारणाएं बदल जाती हैं। सारे मानदंड बदल [illegible] करने में लग जाता है। [illegible] जब हम मंत्र की साधना के द्वारा, शब्द से [illegible] निर्विचार [illegible] पहुंचते हैं, उस समय चैतन्य

का नया उन्मेष जागता है। इसीलिए नमस्कार मंत्र महामंत्र है।

नमस्कार मंत्र के महामंत्र होने का चौथा हेतु है—इससे वृत्तियों का ऊर्ध्वीकरण, वृद्धि का ऊर्ध्वारोहण होता है। हमारी शरीर-रचना में जो वृद्धि का स्थान है, वृत्तियों का स्थान है, उनके केन्द्र हैं, वे सारे नीचे की ओर मुंह किए हुए हैं। वृत्तियां नीचे की ओर, वृद्धि नीचे की ओर, इसीलिए आदमी का चिंतन नीचे की ओर जाता है। नीचे हमारा कामना-केन्द्र है, हमारी सारी वृद्धि काम-केन्द्र की ओर जाती है। हमारी चेतना का पूरा प्रवाह नीचे की ओर जाता है। जब हम नमस्कार महामंत्र की आराधना करते हैं और शक्ति-केन्द्र से प्रारंभ कर, सुषुम्ना के मार्ग से ज्ञानकेन्द्र तक श्वास को ले जाते हैं, तो इसका अर्थ है कि हम नीचे से ऊपर आरोहण कर रहे हैं। तलहटी से शिखर की ओर चढ़ रहे हैं। उस स्थिति में वृत्तियों का मुंह बदल जाता है। वे ऊर्ध्वमुखी हो जाती हैं। वृद्धि जो नीचे की ओर मुंह कर लटक रही थी, वह भी ऊपर की ओर मुंह कर लेती है। हमारी सारी वासनाएं वृद्धि और वृत्तियों के औंधे मुंह का सहारा पाकर, पनप रही थीं। जब वृद्धि का मुंह बदल गया, वृत्तियों का मुंह बदल गया, तब बेचारी कामनाएं, वासनाएं सूखने लग जाती हैं और चेतना का ऊर्ध्वारोहण प्रारंभ हो जाता है।

नमस्कार मंत्र का महामंत्र होने का हेतु है—वृत्तियों का ऊर्ध्वीकरण, वृद्धि का ऊर्ध्वीकरण। मंत्र का एक-एक शब्द आत्म-भावना का ऊर्ध्वीकरण करता है।

मैंने चार हेतु प्रस्तुत किए। इनके परिप्रेक्ष्य में कहा जा सकता है कि यह नमस्कार मंत्र यथार्थ में महामंत्र है।

६

आध्यात्मिक चिकित्सा [१]

- मंत्रशास्त्रीय दृष्टिकोण से जिसका वीर्य प्रकट हो जाए वह महामंत्र।
- शक्तिकेन्द्र आदि चैतन्यकेन्द्रों में मंत्र और प्राणशक्ति की एकता होती है। वहीं वीर्य प्रकट होता है।
- वीर्यवान् मंत्र ही संकल्पशक्ति का विकास करता है।
- प्रेक्षाध्यान के मूल तत्त्व—
- भावक्रिया—मन को जागरूक बनाने का अभ्यास।
- कायोत्सर्ग—शिथिलीकरण का अभ्यास।
- भावना—संकल्पशक्ति के विकास का अभ्यास।
- अनुप्रेक्षा—मूर्च्छा तोड़ने का अभ्यास।
- प्रेक्षा—दर्शन-चेतना के विकास का अभ्यास।

नमस्कार मंत्र महामंत्र है, यह समझने का हमने प्रयत्न किया आध्यात्मिक [illegible] विशेषताओं से और भावों की विशिष्टताओं से। [illegible] दृष्टि से भी यह महामंत्र है। मंत्र-साधना की दृष्टि से महामंत्र [illegible] जिस मंत्र का वीर्य जागृत हो जाता है। जिस मंत्र का वीर्य जागृत [illegible] नहीं होता। विश्व के कण-कण में जो घटित हो रहा [illegible] हो रहा है। एक भी अणु वीर्य-शून्य नहीं है। [illegible] है। कण में शक्ति है तो अनंत में

की शक्ति है। किन्तु जितनी शक्ति चेतन या पदार्थ में होती है वह पूरी की पूरी जागृत नहीं होती। शक्ति का बहुत बड़ा भाग सत्तर-अस्सी या नब्बे प्रतिशत भाग, सोया ही रहता है। केवल दस प्रतिशत या इससे भी न्यून भाग ही जागृत रहता है। जब मंत्र की पूरी शक्ति जाग जाती है, उसका वीर्य जागृत हो जाता है तब मंत्र 'महामंत्र' बन जाता है। महामंत्र तब बनता है जब वीर्य जागृत हो और वीर्य जागृत तब होता है जब प्राण और मन की एकता स्थापित हो। शक्ति-केन्द्र से ज्ञान के चैतन्य केन्द्रों में जब शब्द की धारा, भावना की धारा प्रवाहित होती है, मन और प्राण एकात्मक बन जाते हैं, उनकी एकता स्थापित हो जाती है तब मंत्र में वीर्य प्रकट होता है। वीर्य के द्वारा ही संकल्पशक्ति का विकास होता है। हमारे जीवन की सफलता में संकल्पशक्ति का बहुत बड़ा योगदान है। संकल्पशक्ति के अभाव में कोई कार्य सफल नहीं होता। आदमी सुबह संकल्प करता है और सांझ को वह टूट जाता है। संभवत घंटा बाद ही टूट जाए। दूसरा विचार आते ही संकल्प बदल जाता है। एक आदमी ने दूसरे की कटुवाणी को सुना और सहन कर लिया। मौन रहा। दस मिनट बाद किसी ने आकर कहा—क्या तुम मिट्टी के बने हो? उसने इतनी कटु बात कही और तुम सुनते रहे! मुंह में जबान नहीं थी? इतना सुनते ही उसकी भावना बदल गई। सहने और क्षमा करने का भाव बदल गया। उसने सोचा—'उसने एक बात कही, तो मेरा पुरुषार्थ इसी में है कि मैं उसे दस बातें सुनाऊं। लोग भी मुझे लोहपुरुष कहेंगे। मिट्टी का पुतला थोड़े ही हूं कि सब कुछ सहता चलूं।' ये विचार उसको संकल्प से विचलित कर देते हैं। संकल्प क्यों टूटता है? एक आचार्य ने बहुत सुन्दर बात कही है:

अनिरुद्धाक्षसन्तानाः, अजितोपपरीषहा.।
अत्यक्तचित्तचापल्याः, प्रस्खलन्त्यात्मनिश्चये॥

—'जिस व्यक्ति ने अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण स्थापित नहीं किया, जिस व्यक्ति ने कठिनाइयों को झेलने की क्षमता प्राप्त नहीं की और जिस व्यक्ति ने चित्त की चपलता को नहीं छोड़ा, वह व्यक्ति अपने संकल्प से स्खलित हो जाता है।'

आचार्य ने संकल्प टूटने के तीन कारणों का उल्लेख किया—(१) इन्द्रियों की अनियंत्रित वृत्ति, (२) कठिनाइयों को झेलने की अक्षमता (३) चित्त की चंचलता।

मनुष्य इन्द्रियों का दास होता है। इन्द्रियों के वशीभूत होकर वह नहीं चाहते पर भी अनेक कार्य कर बैठता है। उत्तराध्ययन सूत्र का एक प्रसिद्ध कथानक है। राजा बहुत बीमार हो गया। वैद्य ने चिकित्सा की। राजा नीरोग हो गया।

जाते-जाते वैद्य ने कहा—'राजन् ! तुम्हारा रोग ठीक हो गया है। अब एक बात का परहेज रखना, आम कभी मत खाना। जब तक तुम आम नहीं खाओगे, यह बीमारी नहीं होगी। जिस दिन तुम आम खालोगे, फिर बीमारी से आक्रान्त हो जाओगे। फिर चिकित्सा नहीं हो सकेगी।' राजा ने कहा—ठीक है, आम नहीं खाऊंगा।

एक बार राजा अपने ही आम के बगीचे में घूम रहा था। आम का मौसम था। वृक्ष फलों से लदे थे। राजा ने एक आम्र-वृक्ष के नीचे विश्राम किया। मंत्री ने रोका, पर राजा नहीं माना। हवा चली। एक पका आम राजा की गोद में आ गिरा। राजा ने उसे उठाया, सूंघा। मंत्री से बोला—'कितना सुन्दर और सुगन्धित आम है।' मंत्री ने कहा—'महाराज ! वैद्य की शिक्षा को याद करें। आम सूंघना भी मना है और खाना भी मना है।' राजा ने कहा—'वैद्य तो पागल होते हैं। एक आम सूंघने या चूसने में हानि भी क्या है ?' इतना कहकर राजा आम चूसने लगा और उसके मीठे रस में तल्लीन हो गया। मंत्री ने रोकना चाहा, पर व्यर्थ। आम खाने से जो परिणाम होना था, वही हुआ। राजा मर गया।

जब इन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं होता तब हजार बार निश्चय कर लेने पर भी संकल्प दृढ़ नहीं होता। वह टूट जाता है। यह पहली बात है।

दूसरी बात यह है कि जो कठिनाइयां नहीं झेल सकता, उसका संकल्प नहीं टिक सकता। इस दुनिया में कोई आए और उसे कठिनाइयों से न गुजरना पड़े, यह असंभव बात है। मैं तो समझता हूं कि यदि भगवान् भी इस दुनिया में आएं तो वे भी कठिनाइयों से नहीं बच सकते। बहुत सारे लोग भ्रान्ति में रहते हैं। [illegible] साधना करने वाले भी अनेक भ्रान्तियां पालते हैं। देवालयों की परिक्रमा करने वाले और देवी-देवताओं को पूजने वाले भी भ्रान्ति में रहते हैं। वे सोचते हैं—मंत्र हमारी रक्षा करेगा, देवी-देवता हमारी रक्षा करेंगे। हमने मंत्र की और देवी-देवता की शरण ले ली है, अब कोई कठिनाई नहीं आएगी। इस [illegible] नहीं आनी चाहिए। जो इस भ्रान्ति में रहते हैं, वे नास्तिक बन जाते हैं। इस भ्रान्ति का पहला परिणाम है—नास्तिकता। मन में यह भ्रान्ति [illegible] कि मैंने अमुक देव या अमुक धर्म की शरण ली है, अब कोई कठिनाई नहीं आएगी। जब तक कठिनाई नहीं आती तब तक मन विश्वास से भरा रहता है। [illegible] विश्वास [illegible] है और व्यक्ति कहने लगता है [illegible] छोड़ो इन सबको। वह नास्तिक [illegible]। [illegible] भ्रान्ति पालता है और [illegible]। इसलिए हम भ्रान्तियां न पालें। हम इस [illegible] कि दुनिया में कठिनाई भी आएगी, [illegible]

अवरोह से बच नहीं सकता। सब में अनुकूल स्थितियां भी आती हैं और प्रतिकूल स्थितियां भी आती हैं। प्रश्न होता है फिर धर्म का क्या लाभ हुआ? मंत्र जपने का क्या लाभ हुआ? अपने आराध्य देव की शरण में जाने का क्या लाभ हुआ? हम यह स्पष्ट जानें की धर्म का काम यह नहीं है कि कठिनाइयां न आएं। धर्म का काम यह है कि वह व्यक्ति को कठिनाइयां झेलने में सक्षम बनाए। जो व्यक्ति यथार्थ में धार्मिक होता है, वह कठिनाइयों को हंसते-हंसते झेल लेता है। जिस व्यक्ति में धर्म की चेतना जागृत नहीं होती, वह कठिनाइयों के आने पर घुटने टेक देता है और हीन-भावना से ग्रस्त हो जाता है। धर्म हमारी रक्षा करता है। मंत्र हमारी रक्षा करता है। वे हमें कठिनाइयों से उबार लेते हैं। कठिनाई आना एक बात है और उस कठिनाई को भोगना, उसका संवेदन करना दूसरी बात है। एक है घटना और एक है घटना का संवेदन, उसका भोग। घटना को नहीं टाला जा सकता, किन्तु भोगने को टाला जा सकता है। जिस व्यक्ति में धर्म की चेतना जाग जाती है वह घटना को जान लेता है, भोगता नहीं।

आप सब शरीर-प्रेक्षा कर रहे हैं। आपने मुझे बार-बार यह कहते सुना होगा कि आप प्रतिक्रिया न करें। दर्द हो, पीड़ा हो, वेदना हो तो उसे समभावपूर्वक देखें, उसे द्रष्टाभाव से देखें, कोई प्रतिक्रिया न करें। यह है प्रेक्षा। इसका यह तात्पर्य नहीं है कि आप प्रेक्षा करेंगे तो आपका दर्द मिट जाएगा, पीड़ा मिट जाएगी। वे मिट भी सकते हैं, किन्तु यह कोई अनिवार्यता नहीं है। यह अनिवार्य है, निश्चित है कि दर्द या पीड़ा को भोगना अवश्य ही मिट जाएगा। आप दर्द को तटस्थ भाव से देखेंगे। ऐसे देखेंगे कि घुटने में दर्द हो रहा है और आप दूर खड़े यह देख रहे हैं कि घुटने में दर्द है। मुझे दर्द नहीं हो रहा है, घुटने में दर्द हो रहा है। आप उसे द्रष्टाभाव से देखते चले जा रहे हैं। धर्म के द्वारा यह स्थिति उपलब्ध हो सकती है, मंत्र के द्वारा भी यह स्थिति उपलब्ध हो सकती है कि व्यक्ति में सभी प्रकार के कष्टों, कठिनाइयों, विषम परिस्थितियों को झेलने की क्षमता जाग जाए। वह घटना को तटस्थ भाव से देखे, उसमें लिप्त न हो। उसे भोगे नहीं।

संकल्प टूटने का दूसरा कारण है—परिस्थितियों को झेलने की अक्षमता।

संकल्प टूटने का तीसरा कारण है—चित्त की चंचलता। जिसका चित्त चपल होता है उसका संकल्प टूट जाता है। जब चित्त की एकाग्रता सध जाती है, तब संकल्प नहीं टूटता। चित्त में उठने वाले विकल्प, उतार-चढ़ाव संकल्प को टिकने नहीं देते। व्यक्ति उस चपलता में बह जाता है, संकल्प नहीं रह जाता है।

संकल्प को अटूट रखने के लिए, दृढ़ निश्चय के लिए तीन बातें आवश्यक होती हैं—(१) इन्द्रिय विजय, (२) कष्ट झेलने की क्षमता का विकास और

(३) चित्त की एकाग्रता।

हम नमस्कार महामंत्र के ध्यान का अभ्यास इसीलिए कर रहे हैं कि हमारी संकल्पशक्ति विकसित हो, दृढ़ हो। हम इसे उलटकर समझें। तीन प्रश्न होंगे—इन्द्रियों को वश में कैसे करें ? कठिनाइयों को झेलने की क्षमता कैसे पैदा करें ? मन को एकाग्र कैसे करें ? ये प्रतिप्रश्न होंगे। हमें इनका उत्तर उसी में खोजना है। जब हमारी संकल्पशक्ति दृढ़ होती है तब इन्द्रियां वश में हो जाती हैं, कठिनाइयां झेलने की चेतना जाग जाती है और मन की चंचलता मिट जाती है। फिर एक उलझन सामने आ गई। ये होते हैं तब संकल्पशक्ति दृढ़ होती है और इन्हें दृढ़ करने के लिए संकल्पशक्ति का विकास चाहिए। एक उलझन-भरा अन्योन्याश्रय दोष आ गया। एक व्यक्ति ने पूछा—'तुम किसके नौकर हो ?' उसने कहा—'जिसका यह घोड़ा है, उसका मैं नौकर हूं।' फिर पूछा—'यह घोड़ा किसका है ?' उसने कहा—'जिसका मैं नौकर हूं, उसका यह घोड़ा है।' जिसका यह घोड़ा है, उसका मैं नौकर हूं और जिसका मैं नौकर हूं, उसका यह घोड़ा है। बात दोनों कह दी, किन्तु समझ में एक भी नहीं आई। प्रश्न का समाधान नहीं मिला। ऐसा कथन अन्योन्याश्रय दोष कहलाता है।

यही अन्योन्याश्रय दोष इस कथन में आता है—तीनों बातें पूरी होती हैं तब संकल्पशक्ति दृढ़ होती है और जब संकल्पशक्ति दृढ़ होती है तब तीनों बातें पूरी होती हैं। अर्थ कुछ भी नहीं निकला। वलय का आदि-अंत नहीं बताया जा सकता। यह एक उलझन है। इसको सुलझाने के लिए हमें प्रेक्षा ध्यान की पद्धति का अभ्यास करना होगा। उस प्रेक्षा-ध्यान पद्धति का मूलभूत तत्त्व श्वास है।

प्रेक्षा ध्यान के पांच आधारभूत तत्त्व हैं—भावक्रिया, कायोत्सर्ग, भावना, अनुप्रेक्षा और प्रेक्षा।

पहला तत्त्व है—भावक्रिया। मन को जागरूकता का प्रशिक्षण देना भावक्रिया है। जब तक मन जागरूक नहीं होगा, तब तक कुछ भी नहीं सधेगा, प्रेक्षा- [illegible] आ जाएगी। मैं बार-बार दोहराता हूं—प्रत्येक ध्यान [illegible] ? अध्यात्म की [illegible] मैं कहना चाहूंगा कि इस छोटी बात [illegible] दोनों बात भिन्न नहीं होगी, कुछ भी [illegible] हूं— [illegible] और किसी बात में जागरूकता [illegible]

मैंने पूछा—इसकी विधि क्या है ? उसने बताया—निश्चित काल, निश्चित स्थान और निश्चित वाक्—तीनों का अभ्यास करने से वाक्सिद्धि हो सकती है। उदाहरण के लिए—बारह बजे, अमुक स्थान पर 'अर्हं' या किसी भी मंत्र का या किसी भी शब्दावली का उच्चारण करना है तो यह करना ही है, एक क्षण भी इधर-उधर न हो। निश्चित समय, निश्चित स्थान और निश्चित शब्द को यदि सब समय तक अभ्यास में लिए जाएं तो वाणी में शक्ति आ सकती है, वचन-सिद्धि हो सकती है। क्योंकि मन इतना जागरूक हो गया कि उसमें कोई अन्तर नहीं आ सकता। बारह बजते ही मन अपनी क्रिया दोहरा देगा। जब मन की जागरूकता इतनी बढ़ जाती है तब सब कुछ संभव हो जाता है। जब मन सोया हुआ है, अजागरूक है तब कुछ भी घटित नहीं हो सकता।

मन और कर्म की एकता—यह है भावक्रिया। जो शरीर करे वही मन करे और जो मन करे वही शरीर करे। दोनों साथ-साथ चलें। मन पूरब में और शरीर पश्चिम में न जाए। मन भी पूरब में जाए और शरीर का कदम भी पूरब में जाए। दोनों के पैर साथ-साथ उठें, एकसाथ समानान्तर रेखा में उठें या एकीभूत उठें। इस जागरूकता का नाम है—भावक्रिया।

दूसरा तत्त्व है—कायोत्सर्ग। इसका अर्थ है—शिथिलीकरण। श्वास को शान्त करना, शरीर की चेष्टाओं को शान्त करना, मन को खाली करना, कायोत्सर्ग है। कायोत्सर्ग का पूरा अभ्यास किए बिना प्रेक्षा-ध्यान की साधना नहीं हो सकती। जब मन में तनाव है, मस्तिष्क और स्नायुओं में तनाव है तब प्रेक्षा-ध्यान कैसे होगा ? जब तनाव की स्थिति होती है तब बुरे विचारों को, विकल्पों को आने का अवसर प्राप्त होता है। तनाव विकल्पों के लिए उर्वरा भूमि है। विकल्पों के बीज तनाव की उर्वरा भूमि में ही बोए जाते हैं। वे वहीं अंकुरित होते हैं, पुष्पित और फलित होते हैं। इसलिए तनाव को मिटाना जरूरी है।

मानसिक तनाव, स्नायविक तनाव, भावनात्मक तनाव—इनको मिटाना, तनाव की ग्रन्थियों को खोल देना, यह है कायोत्सर्ग।

तीसरा तत्त्व है—भावना। भावना का अर्थ है—संकल्पशक्ति। हम जिस मंत्र की चर्चा कर रहे हैं, वह भावना का प्रयोग है। अर्हं की ध्वनि पवन है यह भी भावना का प्रयोग है। हम साधना के प्रारम्भ में अर्हं की ध्वनि इसीलिए करते हैं कि ध्यान का वातावरण बन जाए। सारा वायुमंडल ध्यानमय बन जाए और सारे विचार उसमें खो जाएं, सारा स्थान ध्यान के परमाणुओं के उपयुक्त वातावरण से भर जाए। जो व्यक्ति भावना से भावित नहीं होता, वह ध्यान की साधना नहीं कर सकता। प्राचीन शब्द है—भावितात्मा और आज के मनोविज्ञान का शब्द है—इच्छाशक्ति से संपन्न। इसको हम संकल्पशक्ति का विकास

भी कह सकते हैं। जैन आगम, बौद्ध पिटक, 'महाभारत, गीता आदि ग्रन्थों में भी भावितात्मा शब्द प्रयुक्त मिलता है। जो भावितात्मा नहीं होता, जिसने अपनी आत्मा को भावित नहीं किया, वह साधना नहीं कर सकता। साधना तो क्या, वह बुरा काम भी नहीं कर सकता। बुरा काम करने के लिए भी भावित आत्मा होना जरूरी है। जो व्यक्ति क्रूरता से अपने मन को भावित नहीं करता, वह हत्या नहीं कर सकता, चोरी नहीं कर सकता। हर आदमी चोरी नहीं कर सकता, हर आदमी डकैती नहीं कर सकता, हर आदमी हत्या नहीं कर सकता। जिस व्यक्ति ने क्रूरता के विचारों से अपने-आपको भावित कर लिया है, वही हत्या कर सकता है, डकैती डाल सकता है, चोरी कर सकता है। वही क्रूर कर्म कर सकता है। जिस व्यक्ति ने अपने विचारों को, अपने मन को भावित नहीं किया, वह व्यक्ति अच्छा काम नहीं कर सकता। अच्छे विचारों से भी मन को भावित किया जा सकता है और बुरे विचारों से भी मन को भावित किया जा सकता है।

भावित होने पर रासायनिक परिवर्तन होते हैं। पानी जब रंगीन बोतलों में सूर्य की रश्मियों से भावित होता है तब उसके गुण-धर्म बदल जाते हैं, उसकी शक्ति बदल जाती है, उसकी क्षमता बदल जाती है। हर व्यक्ति और हर पदार्थ भावित हो सकता है। व्यक्ति जिस प्रकार की भावना से अपने-आपको भावित करता है, वह वैसा ही हो जाता है। 'यादृशी भावना यस्य, बुद्धिर्भवति तादृशी'—जिसकी जैसी भावना होती है, उसकी बुद्धि वैसी ही बन जाती है।

मंत्र की साधना भावना का प्रयोग है। मंत्र की साधना अपने आपको भावित करने की साधना है। जब हम अर्हत् का ध्यान करते हैं तो अर्हत् की विशेषताओं से मन को भावित करते हैं। जैसे ही 'णमो अरहंताणं'—अर्हत् का स्मरण किया, चाहे अक्षर-ध्यान किया—पद के एक-एक अक्षर का ध्यान किया, चाहे पद का ध्यान किया, चाहे अर्थ का ध्यान किया, इससे हमारे मन का कण-कण, हमारी चेतना का कण-कण अर्हत् से भावित हो जाता है और साधक स्वयं अर्हत् बन जाता है। आचार्य कुन्दकुन्द ने लिखा है—जो व्यक्ति अर्हत् को जानता है वही अपने आपको जान सकता है।

'जो जाणदि अरहंते, दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं, मोहो तस्स लयं जादि॥'

जो व्यक्ति द्रव्य, गुण और पर्याय के द्वारा अर्हत् को जानता है, वही अपनी [illegible] है। जो अपनी आत्मा को जानता है, उसका मोह विलीन [illegible]।

[illegible] अर्हत् के गुण, द्रव्य और पर्याय—इन सबकी

चेतना मे स्वयं स्फूर्त हो गए। बार-बार अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त शक्ति को दोहराने की आवश्यकता नही है। प्रारंभ मे दोहराना आवश्यक होता है। अभ्यास परिपक्व हो जाने के पश्चात् जैसे ही कहा 'अर्हत्', सारा का सारा चैतन्य झकृत हो उठता है, सारी शक्ति विकसित हो जाती है और आनन्द की लहरें सारे शरीर को आप्लावित करने लगती हैं।

व्यक्ति बाजार मे जाता है। जौहरी की दुकान से हीरे खरीदता है। हीरो की चमक देखता है। उनकी विशुद्धि देखता है और 'हार' के लिए उपयुक्त हीरे खरीद लेता है। हार बन जाता है। सारी कल्पनाएं उसमे समा जाती हैं। फिर जब उसे मगाने की आवश्यकता होती है तब वह केवल इतना ही कहता है—'हीरो का हार लाओ।' वह यह नही कहता कि वे हीरे जो चमकते हैं, विशुद्ध है, इतने मूल्य वाले हैं। 'हार' कहने से ये सारी चीजें समा जाती हैं।

इसी प्रकार जैसे ही अर्हत् की ध्वनि सुनाई दी, सारी चेतना अर्हत्मय हो गई। अर्हत् से झकृत हो गई। फिर कोई विशेषण की जरूरत नही है। जो अर्हत् को जानता है उसके अर्हत् की स्मृति आती है, चेतना में अर्हत् उतरता है उसे अपनी आत्मा का बोध होता है और शरीर के कण-कण मे अर्हत् का अनुभव होने लगता है। ध्यान का चौथा चरण सपन्न हो जाता है। जिस व्यक्ति मे अर्हत् की प्रतिष्ठा हो गई, जिसे अपने अर्हत् का अनुभव हो गया, उस व्यक्ति मे फिर मोह नही टिक सकता। उसका मोह विलीन हो जाता है।

हम जो भावना का प्रयोग कर रहे हैं, मत्र का प्रयोग कर रहे हैं, मत्र का ध्यान कर रहे हैं, वह इसीलिए कर रहे हैं कि हम हमारे मन को अर्हत्, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और मुनि—इन पांच परमेष्ठियों से भावित कर लें, हमारा मन पच परमेष्ठीमय बन जाए। हमारा मन इतना भावित हो जाए, हमारी सकल्पशक्ति इतनी दृढ और विकसित हो जाए कि विश्व की कोई भी शक्ति हमे पंच परमेष्ठी से एक अणु भी दूर न कर सके और हम निरतर अपने स्वरूप का—अर्हत्मय स्वरूप का अनुभव करते रहें। संकल्पशक्ति का विकास अत्यन्त आवश्यक है। जब तक यह उपलब्ध नहीं होता तब तक प्रेक्षा-ध्यान के अवरोधो को समाप्त नही किया जा सकता। शरीर-प्रेक्षा, श्वास-प्रेक्षा, चैतन्य केन्द्र-प्रेक्षा या विचार-प्रेक्षा—इनको आप सहज-सरल न समझें कि मन को लगाया और सब कुछ दीखने लग गया। ऐसा नहीं है। कठिन कर्म है। अभ्यास-सापेक्ष है। कितने अवरोध आते हैं। व्यक्ति शरीर की प्रेक्षा करने बैठता है और बीच मे ही इतने विकल्प उठ जाते हैं कि शरीर-प्रेक्षा वहीं रह जाती है और मन विश्व की यात्रा करने निकल पडता है, ऑफिस की या दुकान की यात्रा करने के लिए प्रस्थान कर देता है। जब हम मन को भावित करना सीख जाते हैं, सकल्पशक्ति दृढ हो जाती है तब ये बाधाएं नही होती। विकल्प और विचार के परमाणु हमारे मस्तिष्क के आस-पास मडराते

हैं, किन्तु हमारी आत्मा भावित है, मन भावित है और मंत्र की आराधना से हमारी संकल्प-शक्ति विकसित है तो वे परमाणु भीतर प्रवेश नहीं कर पाएंगे। मंत्र एक कवच है, प्रतिरोधात्मक शक्ति है, एक सशक्त दुर्ग है। बाहर का एक अणु भी भीतर प्रवेश नहीं पा सकता। जिस व्यक्ति ने आध्यात्मिक मंत्रों की आराधना के द्वारा अपने मन को भावित कर लिया, अपने मस्तिष्क के चारों ओर एक मजबूत कवच बना लिया, उसमें बुरे विचार के परमाणु कभी प्रवेश नहीं कर पाएंगे। वे परमाणु आएंगे, टकराएंगे, टकरा-टकराकर लौट जाएंगे, भीतर नहीं जा सकेंगे, क्योंकि भीतर प्रवेश करने की उनकी क्षमता नहीं रहती।

डाक्टर दो दिशाओं में काम करता है। वह बीमारी के कीटाणुओं को नष्ट करने की दवा देता है और साथ-साथ प्रतिरोधात्मक शक्ति को बढ़ाने का भी उपाय करता है। जिस रोगी की प्रतिरोधात्मक शक्ति कम होती है, जिसका रजिस्टेंट पावर कम होता है, उसको दी जाने वाली औषधियां अधिक लाभप्रद नहीं होतीं। जब शरीर में बीमारियों से लड़ने की शक्ति नहीं है तब दवाई क्या करेगी? दवाई काम तब करती है, जब शरीर उसका काम करे, शरीर की प्रकृति उसका सहयोग करे। जब प्रतिरोधात्मक शक्ति विकसित होती है, बीमारी से जूझने की क्षमता होती है, तब दवाई काम करती है। दोनों साथ-साथ चलने चाहिए—बीमारी के कीटाणुओं का नाश और उनसे जूझने की प्रतिरोधात्मक शक्ति का विकास।

मन के द्वारा दोनों काम होते हैं—(१) मन की विकृति मिटती है (२) प्रतिरोधात्मक शक्ति विकसित होती है। शक्ति इतनी बढ़ जाती है कि बाहर के आक्रमण का भय नहीं रहता। ऊर्जा का वातावरण प्रबल बन जाता है। बाहर के [illegible] या पहुंचते ही नहीं। जिस व्यक्ति ने नमस्कार मंत्र जैसे [illegible] अपने मन को भावित कर लिया, मंत्र की हजारों-लाखों आवृत्तियां कर [illegible] अभिमंत्रित बना लिया, वह व्यक्ति अप्रिय या प्रतिकूल घटनाओं [illegible] उसको भोगना नहीं। उन घटनाओं का उसके मन पर [illegible]। इस प्रतिरोधात्मक शक्ति के निर्माण के लिए, मन को [illegible] बनाने के लिए भावना का [illegible] है। [illegible] ध्यान के लिए प्रतिकूल नहीं है। [illegible] इस आधार को मजबूत कर [illegible] समाप्त हो जाते हैं।

[illegible] प्रतिदिन [illegible] सकता है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] और-और [illegible] भी [illegible] है। [illegible] नहीं [illegible]

यह भान ही नहीं है कि मन पर भी मैल जमता है, मन भी मलिन होता है। मन को साफ करने के लिए उसे पानी से नहलाने की आवश्यकता नहीं है। उसे साबुन या अन्य साधनों से धोने की आवश्यकता नहीं है। किन्तु उसे साफ करने के अन्य उपाय हैं। जब तक मन साफ नहीं होता तब तक ध्यान की स्थिति ही नहीं बनती। जब मन की मलिनता मिट जाती है, साफ हो जाती है, तब ध्यान होने लगता है।

जब आदमी बीमार होता है तब छटपटाता है, पैरों को पछाड़ता है, हाथों को पटकता है। जब आदमी सन्निपात अवस्था में होता है, हिस्टीरिया से ग्रस्त होता है या उन्माद या आवेश से भरता है तब उसमें एक विशेष शक्ति जागती है। दस आदमी भी उसे थाम नहीं पाते। इसी प्रकार जब मन बीमार होता है, मलिन होता है, मैल से ग्रस्त होता है तब छटपटाता है और मन भी अपने हाथ-पैर पछाड़ने लग जाता है। ऐसी स्थिति में मन एकाग्र नहीं हो सकता।

मन का मैल मिटाना बहुत जरूरी है। उसे धोना चाहिए। मन पर मूर्च्छा का मैल, मोह का मैल, ममत्व का मैल, राग-द्वेष का मैल, वासना का मैल, कषाय का मैल, न जाने कितने मैल हैं। इस स्थिति में प्रेक्षा वहां तक पहुंच ही नहीं सकती। अनुप्रेक्षा मन को पवित्र करने का, मन पर जमे मैल को धोने का अनुपम उपाय है।

मन पर मैल तब जमता है जब हम अनित्य को नित्य मानकर चलते हैं। संयोग को शाश्वत और विजातीय को सजातीय मानकर चलते हैं। हम इस बात को सिद्धान्त से और व्यवहार से भी जानते हैं कि पदार्थ अनित्य हैं, संयोग अनित्य हैं। जो पदार्थ प्राप्त है वह अवश्य नष्ट होता है। जो संयोग मिला है, उसका निश्चित ही वियोग होता है। पदार्थ अनित्य है, पदार्थ का संयोग अनित्य है और पदार्थ विजातीय है। चेतना का गुण-धर्म पदार्थ से भिन्न है। हम इन सब तत्त्वों को जानते हैं, किन्तु पदार्थ को नित्य मानकर व्यवहार करते हैं, पदार्थ के संयोग को शाश्वत मानकर चलते हैं और पदार्थ को सजातीय मानते हैं, अपना मानते हैं। हम इसे जानते नहीं केवल मानते हैं। जानने और मानने में बहुत बड़ा अन्तर है। जिस दिन हम मानने की अवस्था को पार कर जानने की स्थिति में पहुंच जाएंगे तब हमारे लिए पदार्थ पदार्थमात्र होगा और चेतन चेतन होगा। पदार्थ का उपयोग हो सकता है, पदार्थ का संयोग हो सकता है, किन्तु पदार्थ शाश्वत नहीं हो सकता, पदार्थ सजातीय नहीं हो सकता, अपना नहीं हो सकता। अशाश्वत को शाश्वत मानने का आरोप, विजातीय को सजातीय मानने का आरोप, केवल मानने के कारण ही होता है। यदि जान लिया जाता है तो सारे आरोप नष्ट हो जाते हैं। जब तक मन पर मोह या मूर्च्छा का मैल जमा रहता है, तब तक व्यक्ति सब कुछ मानता चला जाता है, जानता कुछ भी नहीं है। पदार्थ के मूल स्वरूप को

जाने बिना उसे जाना ही नहीं जा सकता।

मनुष्य नाम और रूप के चक्कर में पड़कर सब कुछ मानता चला जा रहा है और यह झूठा दंभ भरता है कि वह सब कुछ जानता है। हम व्यक्तियों को नाम से जानते हैं। हमने नाम का एक चौखटा बना रखा है। उस चौखटे में जो आकृति आती है उसे हम अमुक नाम से जान लेते हैं। नाम और आकृति को हटा दो, फिर हम कुछ भी नहीं जान पाते। हमारा भ्रम मान्यता के आधार पर पल रहा है। गहराई में हम उतरकर देखें। सारा संसार मानने की कारा में बंदी है। जानने की बात उससे बहुत दूर है। जिस दिन प्रेक्षा-ध्यान सिद्ध होगा, मंत्र की आराधना सिद्ध होगी और शक्तिकेन्द्र से ज्ञानकेन्द्र तक मन को ले जाने या प्राण-धारा को प्रवाहित करने की स्थिति बनेगी तब हम कह सकेंगे कि हम जानते हैं। तब मानने की बात छूट जाएगी। उस भूमिका में पहुंचकर हम कह सकेंगे कि हम जानते हैं, मानते नहीं। जब जानने की बात प्राप्त हो जाएगी तब शरीर भी छूट जाएगा। शरीर के छूटने पर, शरीर पर बनी ममत्व-ग्रन्थि के टूटने पर ममत्व टूटने लगेगा। शरीर के छूटने का अर्थ शरीर से अलग होना नहीं है, किन्तु शरीर के साथ जो ममकार है, वह छूट जाएगा, वह ढीला पड़ जाएगा।

अनुप्रेक्षा के माध्यम से भ्रान्तियों और विपर्ययों को तोड़ा जा सकता है। अनुप्रेक्षा के द्वारा मन पर जमे मैल को काटा जा सकता है। अनुप्रेक्षा के द्वारा मानने की भूमिका से उठाकर जानने की भूमिका तक पहुंचा जा सकता है।

पांचवां तत्त्व है—प्रेक्षा। जब भावक्रिया, कायोत्सर्ग, भावना और अनुप्रेक्षा—ये चारों आधारभूत तत्त्व सध जाते हैं तब प्रेक्षा की स्थिति मजबूत बन जाती है। हमारे देखने की शक्ति का विकास होता है। इससे चेतना को, ज्ञान को और दर्शन को खोलने के लिए, विकसित होने के लिए पूरा अवकाश प्राप्त हो जाता है। इस पूरी प्रक्रिया को समझ कर चलें, तब हम मंत्र की आराधना की उपयोगिता को समझ सकेंगे। यह पूरी प्रक्रिया जब ज्ञात नहीं होगी तब प्रेक्षा-ध्यान के संदर्भ में मंत्र की उपयोगिता का क्या आयाम है, इसे भी हम समझ नहीं सकेंगे।

७

आध्यात्मिक चिकित्सा (२)

- जिसमे हम स्वस्थ न हो उस धर्म के प्रति हमारा आकर्षण नही हो सकता।
- अनुलोम-विलोम प्रक्रिया—स्वस्थ शरीर में बलवान् आत्मा, यह शरीर-चिकित्सा का सूत्र। आध्यात्मिक स्वास्थ्य होने पर शरीर स्वस्थ, यह अध्यात्म-चिकित्सा का सूत्र।
- अध्यात्म-रोग—आवरण, विकार और अन्तराय। रुग्ण अवस्था में चेतना, आनन्द और शक्ति का समन्वित विकास नही हो सकता।
- आध्यात्मिक चिकित्सा—आवरण-प्रेक्षा, विकार-अनुप्रेक्षा और अन्तराय भावना।

•

उस धर्म के प्रति हमारे मन मे आकर्षण नहीं हो सकता जो हमारे वर्तमान को उज्ज्वल नही बनाता, जो हमारे अन्धकार को दूर नहीं करता, हमारे पथ को प्रशस्त या आलोकित नहीं करता। एक युग था मान्यता का। उसमे मान्यता के आधार पर धर्म चलता था। आज वैज्ञानिक युग है। यह तार्किक और बौद्धिक युग है। इसमे मान्यता के आधार पर धर्म नही चल सकता। इस युग मे वही धर्म चल सकता है जो प्रायोगिक है और हमारे अनुभव का विषय बनता है, हमारे अनुभवों मे उतरता है। जो अनुभव मे नही उतरता, जिसका परिणाम हमे प्रतीत नही होता, जिसका फल हमे उपलब्ध नही होता, उस धर्म के प्रति, वैज्ञानिक

दृष्टि रखने वाले व्यक्ति का आकर्षण नहीं हो सकता।

हमने प्रेक्षा-ध्यान पद्धति का मार्ग चुना है। इसका मूल कारण है कि धर्म प्रायोगिक बने और व्यक्ति-व्यक्ति के अनुभव में उतरे। वह धर्म तर्क से हटकर, शब्द और बुद्धि से हटकर, अनुभव के धरातल पर आ जाए। जो बात अनुभव के धरातल पर आ जाती है, उसे कोई नहीं मिटा सकता। हजार तर्क सामने आ जाएं, किन्तु जिस व्यक्ति ने जो अनुभव प्राप्त कर लिया, वह तर्क को कभी स्वीकार नहीं करता। जब स्वयं का अनुभव नहीं होता, अपनी पूंजी नहीं होती—सब कुछ उधार ही उधार होता है, तब व्यक्ति को जिधर झुकाना चाहें झुका सकते हैं।

हमने नमस्कार महामंत्र की आराधना की, अभ्यास किया और अनेक प्रयोग किए। यह सब इसलिए किया कि उससे हमारी वृत्तियां बदलें, हमारा स्वभाव बदले, पदार्थ के प्रति होने वाला आकर्षण बदले और अपना अस्तित्व जो अर्हत् है वह प्रकट हो जाए। यही हमारा उद्देश्य है। हम किसी दूसरे अर्हत् को प्रकट करना नहीं चाहते। हम अपने ही अर्हत् को अपने द्वारा प्रकट करना चाहते हैं। हम स्वयं सत्य को खोजें। अपने भीतर जो सत्य छिपा है उसे प्रकट करें, प्राप्त करें। अर्हत् का ध्यान हम इसलिए करते हैं कि भीतर सोया हुआ अर्हत् जाग जाए।

अर्हत् के ध्यान से, अर्हत् के मंत्र-जप से अर्हत जाग सकता है, किन्तु जब तक मंत्रों की भावना अवचेतन मन तक नहीं पहुंच जाती तब तक हमारा अर्हत् कैसे जागेगा? यह एक प्रश्न है। मनोविज्ञान का सिद्धांत है कि जो बात अवचेतन मन तक नहीं पहुंच जाती, वह हमें प्रभावित नहीं कर सकती। जो संकल्प केवल स्थूल मन तक ही पहुंचता है, वह संकल्प टिकता नहीं, टूट जाता है। स्थूल मन की शक्ति सीमित है। उसके पास अक्षय शक्ति का खजाना नहीं है। इसलिए जो बात केवल स्थूल मन तक, चेतन मन तक, बाहरी मन तक ही पहुंचती है उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। अवचेतन मन बहुत शक्तिशाली होता है। उस तक पहुंचा हुआ संकल्प फलदायी होता है। वह टूटता नहीं। इसलिए मनोविज्ञान की भाषा में कहा जाता है कि भावना अवचेतन मन तक पहुंचनी चाहिए। अध्यात्म की भाषा में कहा जाता है कि भावना प्राण तक पहुंचनी चाहिए। [illegible] भीतर गहरे में नहीं उतरता, मनोभाव नहीं [illegible] नहीं सकती। जब तक मंत्र मन की भूमिका को [illegible] भाव की भूमिका का आरोहण नहीं कर लेता [illegible] सकती, यदि [illegible] नहीं होगा। इसलिए यह [illegible] मन की भूमिका [illegible] भूमिका में आए।

इस संदर्भ मे हमे प्राण की दार्शनिक भूमिका को भी समझ लेना चाहिए। हम शरीर-प्रेक्षा करते हैं। कुछ लोग कहते हैं—शरीर को क्या देखें? कौन-सा भगवान् या परमात्मा या इष्टदेव है जो हम इसे देखें? ऐसा कहने वाले सचाई को विस्मृत कर देते हैं। मैं पूछना चाहता हूं—हमारा चैतन्यमय आत्मा या अर्हत् कहा है? इस शरीर के भीतर है या अन्यत्र? अनन्त ज्ञानसंपन्न, अनन्त शक्ति-संपन्न, अनन्त आनन्दसंपन्न और अनन्त चेतनासंपन्न जो आत्मा है, परमात्मा है, वह इसी शरीर के भीतर विराजमान है। आत्मा की शक्ति को बाहर प्रकट करने वाला कर्मशरीर कहा है? वह सूक्ष्म शरीर भी इसी स्थूल शरीर के भीतर है। कर्मशरीर आत्मा से शक्ति उपलब्ध करता है। उस शक्ति को बाहर फेंकने का सबसे बड़ा माध्यम है तैजस शरीर। वह कहा है? वह भी इसी शरीर के भीतर है, बाहर नहीं। तैजस शरीर के द्वारा सारी जीवन यात्रा को संचालित करने वाली प्राणशक्ति कहां है? वह भी इसी शरीर के भीतर है। प्राणशक्ति से संचालित होने वाले पांच इंद्रिय प्राण, मन प्राण, वचन प्राण, काया प्राण, श्वासोच्छ्वास प्राण, और आयुष्य प्राण—ये दसों प्राण कहा हैं? ये भी शरीर में ही हैं। सब शरीर में हैं, बाहर नहीं। प्राणशक्तियां इसी शरीर मे, प्राण का स्रोत इसी शरीर मे, तैजस शरीर इसी शरीर मे, कर्म शरीर इसी शरीर मे और परम प्रभु आत्मा भी इसी शरीर मे। कितना महत्त्वपूर्ण है यह शरीर। जब सब कुछ इसके भीतर है तब क्या स्थूल शरीर के दरवाजों को खोले बिना, उनमें प्रवेश किए बिना, क्या आत्मा तक पहुंचा जा सकता है? सीधे आत्मा तक पहुंचने की बात तथ्यपूर्ण नहीं है। कुछेक शक्तिशाली व्यक्ति ऐसे होते हैं जिन्होंने अनेक जन्मों मे अनेक प्रकार का तप तपा है, वे व्यक्ति सीधे आत्मा तक पहुंच सकते हैं। साधारण व्यक्ति सीधा आत्मा तक नहीं जा सकता। वे व्यक्ति अपवाद मात्र होते हैं। उनका अनुसरण नहीं किया जा सकता। वह सामान्य मार्ग नहीं बन सकता। सामान्य मार्ग यही है कि साधक सबसे पहले स्थूल शरीर की उपासना करे, उसे अत्यन्त सूक्ष्मता से देखे, समझे। स्थूल शरीर के स्पदनों को तथा सूक्ष्म-शरीर—कर्म शरीर के स्पदनों को पकड़ने की क्षमता विकसित करे। इस क्षमता का विकास हुए बिना आध्यात्मिक प्रगति नहीं हो सकती।

कुछ लोग कहते हैं कि चैतन्य-केन्द्रों पर ध्यान प्रारंभ से ही क्यों नहीं कराया जाता? वे इस बात से अनभिज्ञ हैं कि जब तक श्वास से परिचय नहीं हो जाता, दीर्घश्वास-प्रेक्षा नहीं सध जाती, शरीर-प्रेक्षा का अभ्यास परिपक्व नहीं हो जाता तब तक चैतन्यकेन्द्रों पर ध्यान नहीं हो सकता। विकास क्रमिक होता है। हमें एक क्रम से ही अभ्यास करना चाहिए। प्रयोग कराने वाले व्यक्ति को यह ज्ञात होना चाहिए कि प्रयोग करने वाले व्यक्ति की चेतना को कैसे धीमे-धीमे आगे बढ़ाया जाए। जब वह साधक आगे की भूमिका तक अभ्यास कर लेता है तब कोई

कठिनाई नहीं होती। एवरेस्ट पर्वत की चोटी तक पहुंचने वाला व्यक्ति क्रमशः आरोहण करते-करते वहां पहुंचता है। एक ही दिन में वहां नहीं पहुंच जाता। वह यदि यह सोचे कि इतना लंबा समय लगा, अच्छा होता कि पहले ही दिन यहां पहुंच जाता, तो यह असंभव कल्पना होगी। आरोहण का एक क्रम होता है। उस क्रम को छोड़कर हम छलांग नहीं भर सकते।

मंत्र के द्वारा होने वाली क्षमता का विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक शरीर और शरीर के भीतर होने वाले चैतन्य केन्द्रों के स्पन्दनों का रहस्य नहीं समझ लिया जाता।

नमस्कार महामंत्र बहुत प्रशस्त मंत्र है। उसमें हम अर्हत् को नमस्कार करते हैं, सिद्धों को नमस्कार करते हैं, अध्यात्म-यात्रा के महान संवाहक आचार्य को नमस्कार करते हैं, समूचे श्रुतसागर का मंथन करने वाले उपाध्याय को नमस्कार करते हैं और समूचे लोक में विद्यमान अध्यात्म साधकों को नमस्कार करते हैं। उन सबको नमस्कार करते हैं। हमारा ध्येय ऊंचा है। हमारी पदावली बहुत पवित्र है। हमारी भावना बहुत अच्छी है। भौतिक उपलब्धि की कोई कामना नहीं है। केवल आत्म-जागरण की ही भावना है। इतना होने पर भी जब तक पूरी विधि समझ में नहीं आती, चैतन्यकेन्द्रों के साथ, प्राणशक्ति के साथ मंत्र को जोड़ने की कला समझ में नहीं आती तब तक आरोहण नहीं हो सकता। पूरी विधि ज्ञात हुए बिना सफलता नहीं मिलती।

प्राचीन समय की बात है। आचार्य पादलिप्त आकाश में उड़ने की शक्ति से संपन्न थे। वे मंत्र या तंत्र के द्वारा नहीं, किन्तु पैरों पर रासायनिक लेप कर आकाश में उड़ान भर लेते। बहुत लम्बी यात्रा कर लौटते। उस समय के प्रसिद्ध रसायनशास्त्री नागार्जुन ने यह जाना। उन्होंने आचार्य का शिष्यत्व स्वीकार किया। जब आचार्य पादलिप्त आकाश में उड़कर पृथ्वी पर लौटते तब नागार्जुन उनके पैर प्रक्षालन करते और उस लेप में रहे द्रव्यों को जानने के लिए उस पानी को सूंघते और आस्वादन लेते। प्रतिदिन यह क्रम चलता रहा। वे स्वयं बहुत बड़े वैज्ञानिक और रसायनशास्त्री थे। धीरे-धीरे वे उस लेप के सारे पदार्थों को [illegible] जान गए। वे आगे बढ़ गए। उन्हीं पदार्थों से लेप तैयार कर [illegible]। वे आकाश में उड़ने लगे। जमीन पर आते और फिर [illegible] उनकी उड़ान [illegible]। उड़ने में [illegible] और लेप के मिश्रित द्रव्यों की [illegible]। आचार्य पादलिप्त [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible]

वैसा ही किया और अब वे इस लेप के माध्यम से आकाश की लम्बी यात्रा करने में सफल हो गए।

विधि विधि होती है। जब तक पूरी विधि ज्ञात नहीं होती तब तक कुछ नहीं हो सकता।

कार्य तीन प्रकार के होते हैं—अकृत, अविधिकृत और विधिकृत। एक आदमी कोई काम करता ही नहीं। वह कार्य अकृत ही रहता है। एक आदमी कोई कार्य करता है, किन्तु विधिपूर्वक नहीं करता। उसमें भी जो उपलब्ध होना चाहिए वह उपलब्ध नहीं होता। वह अविधिकृत कार्य है। एक आदमी कोई कार्य विधिपूर्वक करता है। वह बहुत जल्दी सफल हो जाता है। वह विधिकृत कार्य है।

हम यह प्रत्यक्ष अनुभव कर रहे हैं कि जो लोग प्रेक्षा-ध्यान को विधिपूर्वक कर रहे हैं, वे आगे बढ़ रहे हैं, उन्हें कुछ अनुभव भी होने लगा है। हम 'णमो अरहंताणं' का ध्यान श्वेत वर्ण में करते हैं। चार-पांच दिनों में ये सातों अक्षर सफेद वर्ण में चमकते हुए दीखने लग जाते हैं। कुछ व्यक्तियों को और अधिक समय लगता है। यह सही है कि जो साधक निरंतर तीन या छह महीने तक यह ध्यान विधिपूर्वक करता है वर्ण उसकी आखों के सामने स्पष्ट हो जाते हैं।

नमस्कार महामंत्र के पांच पद हैं और पांचों के पांच भिन्न-भिन्न वर्ण हैं। अर्हंत का वर्ण है श्वेत, सिद्ध का वर्ण है लाल, आचार्य का वर्ण है नीला, उपाध्याय का वर्ण है पीला और मुनि का वर्ण है काला। नमस्कार महामंत्र की उपासना करने वाला साधक 'णमो अरहंताणं' को श्वेत वर्ण में, 'णमो सिद्धाणं' को लाल वर्ण में, 'णमो आयरियाणं' को पीले वर्ण में, 'णमो उवज्झायाणं' को नीले वर्ण में और 'णमो लोए सव्व साहूणं' को काले वर्ण में लिखें। आखें बन्द कर उन सभी अक्षरों को पढ़े। चमकते हुए रंगों में ये सारे वर्ण बन्द आखों के सामने स्पष्ट हो जाएंगे। इस अभ्यास की संपूर्ति के लिए तीन या छह महीने का समय अपेक्षित है। जिस व्यक्ति का मन संवेदनशील होता है वह जल्दी पकड़ लेता है। जो व्यक्ति कम संवेदनशील होता है, उसे पकड़ने में समय लग सकता है। समय की लम्बाई होने से यह न समझें कि कार्य विधिपूर्वक नहीं हो रहा है। हम विधिपूर्वक ही कर रहे हैं, परतु सफलता की प्राप्ति व्यक्ति के संस्कार-सापेक्ष और समय-सापेक्ष होती है। दस दिन के शिविर-काल में भी कुछ-कुछ अभ्यास हो ही जाता है। सबका अपना-अपना अनुभव होता है। जब अनुभव होता है तब व्यक्ति सोचता है—अरे! यह मार्ग तो बहुत अच्छा था। हमने इतने दिन ध्यान ही नहीं दिया।

नमस्कार महामंत्र की उपासना विधिपूर्वक की जाए। शब्द से अशब्द तक, शब्द से अर्थ तक और स्व-स्वरतंत्र के स्पंदनों से प्राण की धारा तक, प्राण के स्रोत तक ले जाया जाए तो मंत्र की शक्ति जागृत होती है। मंत्रशक्ति के जागृत

होने पर यह संदेह नहीं रहता कि इस ध्यान से परिवर्तन हो रहा है या नहीं ? कुछ प्राप्त हो रहा है या नहीं ? शब्द से अशब्द तक, शब्द से प्राण तक कैसे ले जाया जाए—इस प्रक्रिया की चर्चा पहले हो चुकी है, फिर भी संक्षेप में उसकी चर्चा कर दूं।

चैतन्य केन्द्रों का रहस्य समझे बिना शब्द को प्राण तक नहीं ले जाया जा सकता। जब तक चैतन्य-केन्द्रों का हमें परिचय नहीं है, वहां होने वाले स्पन्दनों का परिचय नहीं है, वहां होने वाली सूक्ष्म ध्वनि के स्पंदनों से हम परिचित नहीं हैं तब तक मंत्र की शब्दावली को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता। सबसे पहले मन को शक्तिकेन्द्र पर केन्द्रित करना होता है। वहां होने वाले प्रारम्भिक स्पन्दनों को पकड़ना होता है। उसके पश्चात् सुषुम्णा के मार्ग से, ब्रसनाडी से, शब्दावली को ऊपर की ओर ले जाते हैं। ऊपर आते ही वह शब्दावली की भूमिका बदल जाती है। जब वह शब्दावली दर्शन केन्द्र में पहुंचती है तब वह मन की शब्दावली बन जाती है। भाषा की शब्दावली पीछे छूट जाती है। फिर 'णमो अरहंताणं' का पाठ नहीं होता, 'णमो अरहंताणं' का साक्षात् हो जाता है। और जब इस दर्शन-केन्द्र से आगे ललाट में ज्ञान-केन्द्र तक वह अर्थ और ऊपर आरोहण करता है तब हमें अर्हत् का साक्षात् हो जाता है। अर्हत् पद के अर्थ की रश्मियां हमारे समूचे शरीर में फैल जाती हैं। शब्द 'अशब्द' बन जाता है। पद 'अपद' बन जाता है। मंत्र का प्रयोजन प्रकट हो जाता है। मंत्र वीर्यवान् और शक्तिशाली बन जाता है। यह सारा होता है ज्ञान-केन्द्र में पहुंचने पर। मंत्र जब तक वहां नहीं पहुंचता तब तक उससे बहुत बड़ी आशा नहीं की जा सकती।

इसीलिए जब तक हमारा मंत्र अवचेतन मन तक नहीं पहुंच जाता, अव-चेतन मन का [illegible] नहीं बन जाता तब तक वह शक्तिशाली नहीं बनता। आज के परामनोवैज्ञानिक या मनोवैज्ञानिक सजेशन और ऑटोसजेशन के द्वारा [illegible] है। [illegible]—दूसरे व्यक्ति द्वारा दी जाने वाली सूचना और [illegible] स्वयं को ही सूचना देना है। व्यक्ति अपने-आप [illegible]—'मैं स्वस्थ हो रहा हूं, मैं स्वस्थ हो रहा हूं।' जब यह ज्ञान [illegible], व्यक्ति स्वस्थ होना शुरू हो जाता है। आ-[illegible] मन तक पहुंचने [illegible], जिससे आशा [illegible] [illegible] परिणाम नहीं आता। [illegible]

है। जब चेतन मन के सुझाव को अवचेतन मन पकड़ लेता है, अन्तर्मन पकड़ लेता है तो वह सुझाव बहुत शक्तिशाली बन जाता है। वह रोम-रोम में व्याप्त हो जाता है।

योग के आचार्य बतलाते हैं कि कोई भावना या संकल्प करना हो, अपने आप को कोई सुझाव देना हो तो वह पूरक के समय दो। जब श्वास को भीतर खींचो तब उसके साथ सुझाव को जोड़ दो। जो सुझाव श्वास के साथ भीतर जाता है, वह अन्तर्मन में व्याप्त हो जाता है। जो सुझाव रेचन के समय, श्वास निकालते समय दिया जाता है, उसका कोई विशेष प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। पूरक के समय सुझाव देकर, श्वास का संयम या कुंभक कर, उस पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है तो वह बात बहुत गहरे में पहुंच जाती है। वह अवचेतन मन तक पहुंच जाती है। तब हमारा संकल्प बहुत शक्तिशाली और भावना फलवती हो जाती है।

इसलिए यह बात बार-बार कही जाती है कि जब तक साधक शरीर में होने वाली चैतन्य की प्रक्रिया को, शरीर में होने वाले स्पन्दनों की प्रक्रिया को नहीं समझता, तब तक कितने ही बड़े मंत्र की उपासना की जाए, उससे वह लाभ नहीं मिलता, जितना उससे मिलना चाहिए।

नमस्कार महामंत्र बहुत बड़ी चिकित्सा पद्धति है। यह चिकित्सा की आध्यात्मिक पद्धति है। इस सन्दर्भ में एक प्रश्न उभरता है—क्या बीमारी भी आध्यात्मिक होती है, जिसकी चिकित्सा के लिए आध्यात्मिक चिकित्सा चाहिए? यह तथ्य है, आध्यात्मिक रोग होते हैं, बीमारियां होती हैं। उनकी चिकित्सा के लिए नमस्कार महामंत्र अनुपम चिकित्सा पद्धति है।

आध्यात्मिक रोग कौन-कौन-से हैं? सूत्रकृतांग सूत्र में महावीर की स्तुति के प्रसंग में बताया है कि महावीर ने क्रोध, मान, माया और लोभ—इन चार आध्यात्मिक दोषों को समाप्त कर दिया। ये चारों आध्यात्मिक रोग हैं। जब तक आध्यात्मिक रोग समाप्त नहीं होते तब तक शरीर की बीमारियां भी कभी समाप्त नहीं होतीं। सबसे पहले आध्यात्मिक रोग होता है, फिर प्राणिक रोग होता है, फिर मन का रोग होता है और अन्त में शरीर का रोग होता है। शरीर में बीमारी अभिव्यक्त होती है। उसका उत्स है अध्यात्म। पहले ही वह अन्तर में जन्म ले लेती है। फिर वह प्राण में आती है, फिर मन में और अन्त में स्थूल शरीर में प्रकट हो जाती है। शरीरशास्त्री का यह मत रहेगा कि सबसे पहले शरीर को स्वस्थ करो। शरीर स्वस्थ होगा तो मन अपने-आप स्वस्थ हो जाएगा। 'स्वस्थ शरीर में बलवान् आत्मा का निवास होता है,—यह प्रसिद्ध सूक्त है। हम इसे हजारों बार दोहरा चुके हैं।

अध्यात्मशास्त्री, अध्यात्म की साधना करने वाला साधक कहेगा—'भवरो

पहले अन्तर् के रोग को, अध्यात्म की बीमारी को मिटाओ। जब तक अध्यात्म की बीमारी नहीं मिटेगी तब तक प्राण, मन और शरीर की बीमारियां नष्ट नहीं हो सकतीं।'

दो पद्धतियां हैं—एक है फूल से जड़ तक पहुंचने की और दूसरी है जड़ से फूल तक पहुंचने की। यह सचाई है कि जब मूल मजबूत नहीं होता, जड़ स्वस्थ नहीं होती, मूल को पूरी प्राणशक्ति नहीं मिलती, तब न फूल होता है, न फल होता है और न और कुछ होता है।

एक बूढ़ा पेड़ गिरने लगा। वह गिड़गिड़ाकर भूमि से बोला—'मां! तुम सबकी रक्षा करती हो, मुझे गिरने से बचाओ।' भूमि बोली—'बेटा! अब मैं क्या करूं? तुमने अपनी जड़ें खोखली कर लीं। मेरे पास अब तुम्हें बचाने का कोई उपाय नहीं है।' पेड़ धराशायी हो गया।

जिसकी जड़ें खोखली हो जाती हैं, उससे फूल, फल और पत्तों की आशा नहीं की जा सकती। जड़ के महत्त्व को समझें, उस तक पहुंचे। मैं यह कहना नहीं चाहता कि शरीर में बीमारी होती ही नहीं। कुछ होती हैं। किन्तु अधिकांश बीमारियां आत्मा से आती हैं, प्राण से आती हैं, मन से आती हैं। अल्सर एक बीमारी है। उसका मूल है मन। वह सबसे पहले मन की विकृति में जन्म लेता है। होमियोपैथी चिकित्सा पद्धति सभी बीमारियों का मूल मन को मानती है। आयुर्वेद और एलोपैथी चिकित्सा पद्धतियां भी कुछेक रोगों का मूल मन को मानती हैं। अति क्रोध और अति आवेश में आदमी मर जाता है, हार्ट फेल हो जाता है। यह शारीरिक अस्वस्थता के कारण होने वाला मरण नहीं है। यह है मन की असाधारण स्थिति में घटित होने वाला मरण।

तुलसीदासजी के रामचरितमानस में एक प्रकरण है, जिसमें यह बतलाया गया है कि किस प्रकार मानसिक बीमारियां शरीर में प्रकट होती हैं। उनकी भाषा में [illegible]। क्रोध आता है और पित्त कुपित हो जाता है, बीमारी हो जाती है।

हम इस सचाई को विस्मृत न करें कि बहुत सारी बीमारियों की जड़ें हमारे [illegible] भाव प्राण में होती हैं और उससे भी आगे आवेगों में [illegible]।

[illegible] स्मृति, बुद्धि और आवेग (इमोशन)। स्मृति [illegible] बुद्धि [illegible] और उससे भी [illegible] बुद्धि [illegible] स्मृति [illegible]

क्षोभ होता है तो कर्म शरीर का निर्माण होता है, तैजस शरीर बनता है, स्थूल शरीर बनता है, प्राणशक्ति बनती है, मन बनता है, बुद्धि बनती है, इन्द्रियां बनती हैं। यदि ये चार आवेग समाप्त हो जाएं तो कुछ भी नहीं बन सकता।

आवेग बहुत गहरे में हैं। ये आवेग आध्यात्मिक बीमारियां हैं। जब तक इन आवेगों की, कषायों की चिकित्सा नहीं की जाती, कषायों का शमन या नाश नहीं किया जाता तब तक न मन की शांति ही प्राप्त हो सकती है और न शरीर ही स्वस्थ हो सकता है।

मैं इसे कभी अस्वीकार नहीं करता कि बाहरी निमित्तों से, कीटाणुओं से कोई बीमारी नहीं होती, कोई कठिनाई नहीं आती। बाहरी निमित्तों से भी रोग होते हैं, कठिनाइयां आती हैं। आदमी चलता है। ठोकर लगती है। गिरते ही हड्डी टूट जाती है। यह निमित्त से उत्पन्न बीमारी है। इसी प्रकार कीटाणुओं से भी अनेक रोग उत्पन्न होते हैं। हम यह भी स्वीकार करें कि अध्यात्म मे अनेक रोगों का उत्स है। जब तक मंत्र अध्यात्म तक नहीं पहुंचता, आध्यात्मिक चिकित्सा नहीं हो सकती। मंत्र को प्राण के स्तर तक और आवेग के स्तर तक ले जाना होगा। वहां पहुंच कर मंत्र उन रोगों की चिकित्सा कर देगा। रोग मिट जाएंगे। बीमारी बहुत गहरे में है और मंत्र ऊपरी स्तर पर है तो कुछ लाभ नहीं होगा। रोग तैजस शरीर और कर्म शरीर में हैं। हम मंत्र को वहां तक पहुंचाएं। मंत्र की शक्ति उन सभी रोगों को भस्मसात् कर देगी। फिर हम यह नहीं कहेंगे कि मंत्र के द्वारा कुछ नहीं होता।

यदि विधिपूर्वक मंत्र-चिकित्सा पद्धति का प्रयोग किया जाए तो कोई कारण नहीं कि आध्यात्मिक रोग न मिटें। आध्यात्मिक रोग, आध्यात्मिक चिकित्सा पद्धति और उस चिकित्सा पद्धति से संबद्ध प्रयोग—ये सारे तथ्य जब हमें प्राप्त हो जाते हैं तब हमें धीरे-धीरे यह अनुभव होने लगता है कि कषाय कम हो रहे हैं, क्रोध कम हो रहा है, मान कम हो रहा है। जब हम 'णमो' शब्द का उच्चारण करते हैं तब क्रोध कैसे टिकेगा? मंत्र-शास्त्रीय दृष्टि से 'णमो' शोधन-बीज है। यह शुद्धि करता है। जो आवेग आते हैं, उन्हें दूर करता है, उनकी शुद्धि करता है। जब शोधन-बीज का हम अभ्यास करते हैं तब शुद्धि कैसे नहीं होगी? जब 'णमो' पद का उच्चारण करते हैं तो पौष्टिकता और शान्ति प्राप्त कैसे नहीं होगी? बीमारी मिट जाए, इतना ही पर्याप्त नहीं है। बीमार पुष्ट भी होना चाहिए। बीमारी मिट गई और शरीर यदि दुर्बल ही रहा तो कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं हो सकता। कोई बीमारी मिटे और कमजोरी न मिटे तो बीमारी फिर आ जाती है। डॉक्टर दवा के बाद टॉनिक भी देता है। 'णमो' दवा भी है और टॉनिक भी है। यह आध्यात्मिक बीमारी को मिटाने के साथ-साथ आत्मा को शक्तिशाली भी बनाता है। आत्मा में इतना बल संचित हो जाता है कि फिर

अविरति और कषाय आत्मा की परिधि में जाने का साहस ही नहीं करते।

अध्यात्म चिकित्सा के सूत्रों और पूरी प्रक्रिया को समझ लेने के पश्चात् हम उन तथ्यों को भी प्रस्तुत करेंगे कि किस प्रकार इस महामंत्र के द्वारा मन और शरीर की बीमारियां भी मिट सकती हैं? उनका उपचार कैसे किया जा सकता है?

अध्यात्म की तीन बीमारियां हैं जो कषाय के द्वारा प्रकट होती हैं—आवरण, विकार और अन्तराय (अवरोध या प्रतिरोध)। ये तीन बीमारियां हमारे भीतर हैं।

हम सब कुछ जानना चाहते हैं, किन्तु आवरण की बीमारी इतनी बड़ी है कि हम कुछ भी जान नहीं पाते। हम बहुत पवित्र रहना चाहते हैं किन्तु मूर्च्छा और विकृति की इतनी बड़ी बीमारी है कि हमारा मन पवित्र नहीं रहता। हम सब कुछ निर्विघ्नता से सम्पन्न करना चाहते हैं, अपनी शक्ति के द्वारा सब कुछ सिद्ध कर लेना चाहते हैं, किन्तु अन्तराय के परमाणु हमारे मार्ग में इतने अवरोध पैदा कर देते हैं कि हम कुछ नहीं कर पाते।

आवरण, विकार और अन्तराय—इन तीन महान् बीमारियों की चिकित्सा के लिए हमारे तीन साधन सिद्ध हैं—प्रेक्षा, अनुप्रेक्षा और मंत्र की आराधना। हम प्रेक्षा के द्वारा आवरण को मिटाते हैं, अनुप्रेक्षा के द्वारा मूर्च्छा, मोह और विकार का नाश करते हैं और मंत्र की आराधना के द्वारा अन्तराय को मिटाते हैं। प्रश्न होता है कि क्या प्रेक्षा के द्वारा इन तीनों की चिकित्सा नहीं हो सकती? हो सकती है, किन्तु पूरी नहीं हो सकती, अधूरी होती है। यही बात अनुप्रेक्षा और मंत्र की आराधना के लिए है। ये तीनों विशेष पद्धतियां हैं और विशेष [illegible] चिकित्सा-सम्बन्धी मार्ग [illegible] विषय में निष्णातता भी प्राप्त करता है। वह [illegible] विशेष रोग की चिकित्सा का विशेष [illegible] और मंत्र आराधना के लिए लागू होता है। ये अध्यात्म [illegible] किन्तु विशेष रोगों की [illegible]

[illegible]

होगा। जिस कर्म-विशेष को हमें तोड़ना है, उस कर्म को बांधने के जो उपाय हैं,
उनके प्रतिकूल उपायों से ही हम उसे तोड़ सकते हैं। अन्तराय को तोड़ने
के लिए, शक्ति का विकास करने के लिए, ऊर्जा का विकास करने के लिए, मंत्र
की आराधना बहुत उपयोगी होती है। इसीलिए हम भावना, मंत्र, अनुप्रेक्षा और
प्रेक्षा—इस समन्वित पद्धति का उपयोग करते हैं। जो आदमी रुग्ण होता है,
उसकी चेतना, उसकी स्वस्थता, उसकी निर्विकारता, उसकी शक्ति पूरा काम
नहीं करती। हम इस प्रेक्षा-ध्यान की पद्धति, जिसमें अनुप्रेक्षा और मंत्र-आराधना
भी सम्मिलित है, के द्वारा निर्विकारता, वीतरागता, आनन्द और शक्ति का
समन्वित विकास करना चाहते हैं। यही हमारा प्रमुख उद्देश्य है।

हमारे जीवन का सारा तंत्र प्रभावित होता है। जब हम मन को एक विकल्प दे देते हैं, एक विशाल, उदात्त और पवित्र मंत्र दे देते हैं तब सारे विकल्प क्षीण हो जाते हैं और मन का विकल्प पुष्ट होने लगता है। मां बच्चे को मिट्टी खाने से रोकती है। बच्चा नहीं मानता। मां उसके हाथ में वंशलोचन दे देती है। बच्चा मिट्टी खाना छोड़ देता है। यह एक विकल्प है। आचरण के विषय में भी यही बात है। जब तक कोई पवित्र, उदात्त विकल्प प्रस्तुत नहीं किया जाता तब तक पहले वाला आचरण, पहले की धारणा नहीं छूट पाती।

मंत्र की आराधना के द्वारा, मंत्र की चिकित्सा के द्वारा मन को स्वस्थ बनाने का पहला उपाय है—मन को सुन्दर विकल्प देना, उसे एक विधायक मार्ग दे देना और उससे मन के भटकाव को सीमित कर देना।

दूसरा उपाय है—मन को संक्लेश से शून्य कर देना। मन में अनेक संक्लेश होते हैं। जब संक्लेश होते हैं तब सब सताते हैं। जब मन का संक्लेश दूर हो जाता है तब उस व्यक्ति को कोई नहीं सताता।

'नैव देवा न गन्धर्वा, न पिशाचा न राक्षसाः।
न धान्ये स्वयमक्लिष्टं, उपक्लिश्यन्ति मानवम् ॥'

—'देव, गन्धर्व, पिशाच, राक्षस या और कोई भी दूसरे, उस व्यक्ति को नहीं सताते, जिसका मन स्वयं क्लिष्ट नहीं होता, क्लेशयुक्त नहीं होता। उसी व्यक्ति को वे सताते हैं जिसका मन संक्लेश से भरा होता है।'

आकांक्षा, मिथ्यादृष्टिकोण, प्रमाद, कषाय, मन की चंचलता, वाणी की चंचलता और शरीर की चंचलता—ये आंतरिक संक्लेश हैं। जब ये संक्लेश होते हैं तब बाहर का आक्रमण होता है। जब मन में कोई संक्लेश नहीं होता, व्यक्ति अपने-आप में सुस्थिर होता है, व्यक्ति निष्कषाय और वीतराग होता है, अप्रमत्त और जागरूक होता है, उस व्यक्ति पर कोई आक्रमण नहीं कर पाता।

आगमों में बार-बार कहा गया है—'प्रमाद मत करो। प्रमत्त मत बनो।' इसके अनेक कारणों में से एक कारण यह है कि जो प्रमाद करता है, उसे ही प्रेतात्माएं सताती हैं। जो व्यक्ति सदा अप्रमत्त रहता है, जागरूक रहता है उसे कोई नहीं सताता।

मुनि सुदर्शन भगवान् पार्श्व की परंपरा के शक्तिसम्पन्न मुनि थे। एक कापा-लिक अपनी महाशक्ति के द्वारा उन्हें भस्म कर देना चाहता था। उसने शक्ति का प्रयोग किया। मुनि सुदर्शन को शक्ति का भान हो गया। वे तत्काल कायोत्सर्ग में स्थित हो गए। उन्होंने अपनी पवित्र लेश्याओं द्वारा और अपनी जागरूकता के द्वारा अपने आभामंडल को इतना शक्तिशाली बना दिया कि वह महाशक्ति उस आभा-वलय को भेद कर मुनि सुदर्शन तक नहीं पहुंच सकी। उसने लौटकर प्रयोक्ता को ही जला डाला।

जब अप्रमाद और वीतरागभाव जागृत होता है तब कोई भी उस व्यक्ति को सता नहीं सकता।

मंत्र मन के संक्लेशों को दूर करने का बहुत बड़ा माध्यम है। इसीलिए मानसिक स्वास्थ्य के लिए यह चिकित्सा बन जाता है। जब हम अर्हत् का ध्यान करते हैं तब मन के संक्लेश दूर होते हैं। जब हम अर्हत् का अपने में अनुभव करते हैं तो शरीर का कण-कण वज्रमय बनने लग जाता है, एक वज्रमय कवच तैयार हो जाता है।

दुर्योधन गांधारी के सामने खड़ा हुआ। उसने देखा और शरीर वज्रमय बन गया। दूसरे की वेधक दृष्टि से प्रस्फुट होने वाली तेजोलेश्या के द्वारा जब दूसरे का शरीर वज्रमय बन जाता है तब शरीर के कण-कण पर ध्यान करने से वह वज्रमय क्यों नहीं बनेगा? हम अति कल्पना न करें कि ५-१० दिनों के अभ्यास से वह वैसा बन जाएगा। किन्तु मंत्र का अभ्यास यदि विधिपूर्वक चले और वह लंबे समय तक चलता रहे तो यह संभव है कि शरीर का कण-कण इतना सक्रिय और जागृत हो सकता है कि बाहरी शक्ति फिर उसे प्रभावित नहीं कर सकती। फिर [illegible] होने की बात ही समाप्त हो जाती है।

मंत्र साधना में प्राण का बहुत बड़ा महत्त्व है। जब तक हम प्राणशक्ति को [illegible] तब तक मंत्र की वास्तविकता भी हमारी समझ में नहीं आ सकती। [illegible] प्राणशक्ति के द्वारा संचालित होता है। तैजस शरीर [illegible] विद्युत् का [illegible] बन जाता है। प्राणधारा उस विद्युत् को समूचे [illegible]। प्राणधारा तैजस शरीर से निकलती है। वह प्राणधारा दस [illegible]। प्राण एक ही है। प्राण दो नहीं हो सकते। किन्तु स्थान-भेद [illegible] के आधार पर एक ही प्राण दस भागों में बंट जाता है। दस स्थान [illegible] में जाता है। उसके पांच स्थान हैं पांच इन्द्रियां [illegible], घ्राण इन्द्रिय, रस इन्द्रिय और स्पर्शन इन्द्रिय। दूसरे [illegible], शरीर, श्वास और आयुष्य (जीवनी शक्ति)। ये दस [illegible] प्राणधारा शरीर के [illegible] है। इसके बाद [illegible] भाग में [illegible] है।

[illegible] — प्राण, अपान, [illegible]

[illegible]

परिचालित होता है दर्शनकेन्द्र के द्वारा।

शरीर के सभी मुख्य केन्द्र मस्तिष्क में हैं। ये सक्रिय होते हैं प्राण के द्वारा।
प्राण सूर्य की ऊष्मा को लेता है और चक्षु को सक्रिय बनाता है। समान प्राणधारा
मन को सक्रिय बनाती है। अपान प्राणधारा हमारे समूचे शक्ति-तंत्र को सक्रिय
बनाती है। शक्ति का मुख्य स्थान है—अपान का स्थान, नाभि से शक्ति केन्द्र
तक का स्थान। व्यान प्राण हमारी श्रोत्र-शक्ति को सक्रिय बनाता है। उदान प्राण
कंठ से ऊपर की सारी शक्ति को सक्रिय करता है।

नमस्कार महामंत्र की आराधना जब प्राणशक्ति के साथ जुड़ जाती है तब
हमारा मन इतना स्वस्थ होता है कि सामान्यतः उस स्वास्थ्य की परिकल्पना भी
नहीं की जा सकती। वह मन स्वस्थ होता है—जिसमें प्रसन्नता का अजस्र स्रोत
फूट पड़ता है, जिसमें निर्ममत्व भाव का विकास है, जिसमें बुरे विचार नहीं आते,
जिसमें उत्तेजना नहीं आती, जिसको वासना नहीं सताती। महर्षि चरक ने
स्वास्थ्य के लिए कुछ मानदंड स्थापित किए हैं, उनमें जितेन्द्रियता और मन की
प्रसन्नता को भी माना है। शारीरिक स्वास्थ्य के कुछ मानदंड हैं और ये दो मानदंड
मानसिक स्वास्थ्य के हैं। उन्होंने कहा है :

समदोषः समाग्निश्च, समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः, स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

शारीरिक दृष्टि से स्वास्थ्य का विचार करने वाला व्यक्ति मानसिक स्वास्थ्य
को नकार नहीं सकता। जिसका मन स्वस्थ नहीं ...
हो सकता ...
जोड़ ...

... महामंत्र की आराधना अनेक रूपों में की जाती है। उसके पांच
पद और पैंतीस अक्षर हैं। इसकी आराधना बीजाक्षरों के साथ भी की जाती है और
बिना बीजाक्षरों के, केवल मंत्राक्षरों के साथ भी की जाती है। इसकी आराधना
—'एसो पंच णमोक्कारो, सव्वपावप्पणासणो मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ
मंगलं'—इस चूलिका पद के साथ भी की जाती है और इस चूलिका पद के बिना
भी की जाती है। नमस्कार महामंत्र की आराधना पांच पदों के संक्षिप्त रूप 'ॐ'
में भी की जाती है। ॐ में पांचों पद सन्निहित हैं। अर्हत् का 'अ', अशरीरी (सिद्ध)
का 'अ', आचार्य का 'आ', उपाध्याय का 'उ' और मुनि का 'म'—इन आदि
अक्षरों से ॐ निष्पन्न होता है। (अ+अ+आ=आ+उ=ओ+म=ओम्)
ॐ पूर्ण परमेष्ठी का वाचक है। महामंत्र की आराधना ह्रींकार के रूप में भी की
जाती है। पांचों पद 'ह्रींकार' में समा जाते हैं। महामंत्र की आराधना पांच पदों के
आदि अक्षर—अ, सि, आ, उ, सा से निष्पन्न पंचाक्षरी मंत्र 'अ सि आ उ सा'
के रूप में भी की जाती है। यह पंचाक्षरीमंत्र बहुत प्रभावशाली है। इस महामंत्र

की आराधना 'अर्हं' के रूप में भी की जाती है।

इस प्रकार एक ही महामंत्र की आराधना भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए भिन्न-भिन्न रूपों में की जाती है। ॐ णमो अरहंताणं, ॐ णमो सिद्धाणं, ॐ ह्रीं णमो अरहंताणं, ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं। आदि-आदि।

आज हमारे सामने प्रश्न है मन के स्वास्थ्य का। मन का स्वास्थ्य जुड़ा हुआ है प्राणधारा के साथ। जब प्राण को सक्रिय और निर्मल बनाना है तो फिर नमस्कार महामंत्र की साधना प्राण के पांच बीजों के साथ करनी होगी। प्राणधारा के पांच बीज हैं—यं, पं, वं, रं, लं। इन बीजाक्षरों के साथ महामंत्र की आराधना की जाती है।

मंत्र के तीन तत्त्व हैं—शब्द, संकल्प और साधना। मंत्र का पहला तत्त्व है—शब्द। शब्द मन के भावों को वहन करता है। मन के भाव शब्द के वाहन पर चढ़कर यात्रा करते हैं। कोई विचार-संप्रेषण (टेलिपेथी) का प्रयोग करे, कोई सजेशन या आटो सजेशन का प्रयोग करे, उसे सबसे पहले ध्वनि का, शब्द का सहारा लेना ही पड़ता है। वह व्यक्ति अपने मन में भावों को तेज ध्वनि में उच्चारित करता है। जोर-जोर से बोलता है। ध्वनि की तरंगें तेज गति से प्रवाहित होती हैं। फिर वह उच्चारण को मध्यम करता है, धीरे-धीरे करता है, मंद कर देता है। पहले होंठ, दांत, कंठ, सब अधिक सक्रिय थे, वे मंद हो जाते हैं, ध्वनि मंद हो जाती है। [illegible] तक आवाज पहुंचती है पर बाहर नहीं निकलती। जोर से बोलना या मंद स्वर में बोलना—दोनों कंठ के प्रयत्न हैं। ये स्वर-तंत्र के प्रयत्न हैं। जहां कंठ का प्रयत्न होता है, वह शक्तिशाली तो होता है किन्तु बहुत शक्तिशाली नहीं होता। उससे परिणाम आता है किन्तु वह परिणाम नहीं आता जितना हम मंत्र से उम्मीद [illegible]। [illegible] है कि मंत्र से यह हो सकता है, वह हो जाता है। वैसा कंठ-[illegible] परिणाम नहीं आता, तब निराशा आती है और मंत्र के प्रति संशय हो जाता है। [illegible] परिणाम या मूर्धन्य परिणाम तब आता है जब कंठ [illegible] और मन हमारे दर्शनकेन्द्र में पहुंच जाता है। यह [illegible] है। [illegible] मानसिक क्रिया होती है, मानसिक जाप होता है, [illegible] है, न जीभ हिलती है, न होंठ और दांत हिलते हैं। [illegible] नहीं होता। मन ज्योतिकेन्द्र में केन्द्रित हो जाता है। [illegible] अपनी आंखों की [illegible]

मानसिक जप की भूमिका उपलब्ध हुए बिना हम मन की स्वस्थता की भी पूरी परिकल्पना नहीं कर सकते। मन का स्वास्थ्य हमारे चैतन्यकेन्द्रों की सक्रियता पर निर्भर है। जब सारे चैतन्यकेन्द्र—शक्तिकेन्द्र, स्वास्थ्यकेन्द्र, तैजस-केन्द्र, आनन्दकेन्द्र, विशुद्धिकेन्द्र, प्राणकेन्द्र, दर्शनकेन्द्र और ज्योतिकेन्द्र—सक्रिय हो जाते हैं तब हमारी शक्ति का स्रोत फूटता है और मन शक्तिशाली बन जाता है। अन्यथा मन शक्तिशाली नहीं बनता। मन पर निरंतर आघात और प्रतिघात होते रहते हैं। सामाजिक, पारिवारिक और राजनीतिक वातावरण में ऐसी घटनाएं घटित होती रहती हैं जिनसे मन आहत होता है, प्रतिहत होता है। इतने आघात-प्रतिघात के बीच रहता हुआ मन स्वस्थ कैसे हो सकता है ? मन को आघातों से बचाने पर ही वह शक्तिशाली और स्वस्थ रह सकता है। अन्यथा मानसिक स्वास्थ्य की बात कोरी कल्पनामात्र रह जाती है।

मन पर होने वाले आघातों से बचने के लिए एक ही उपाय है कि साधक अपने चैतन्यकेन्द्रों को सक्रिय करे। चैतन्यकेन्द्रों को सक्रिय करने की भी प्रक्रिया है। तैजसकेन्द्र पर ध्यान किया, मन का प्रकाश नाभि से सुषुम्णा तक, पृष्ठभाग तक फैलाया। इससे मन की एकाग्रता सधेगी और सारा तैजसकेन्द्र सक्रिय हो जाएगा। जहां मन जाता है, वहां प्राण का प्रवाह भी जाता है। जिस स्थान पर मन केन्द्रित होता है, प्राण उस ओर दौड़ने लगता है। जब मन को प्राण का पूरा सिंचन मिलता है और शरीर के उस भाग के सारे अवयवों को, अणुओं और परमाणुओं को प्राण और मन—दोनों का सिंचन मिलता है तब वे सारे सक्रिय हो जाते हैं। जो कण सोये हुए हैं, वे जाग जाते हैं। शक्ति बढ़ जाती है। यहां भी हम अति कल्पना न करें कि दो-चार-दस दिन में चैतन्य-केन्द्रों पर ध्यान करने से उनकी सक्रियता बढ़ जाएगी। दस दिन में कुछ अवश्य होगा, पर इतना ही पर्याप्त नहीं है।

कोई व्यक्ति दर्शनकेन्द्र पर ध्यान करता है। जब उसे वहां स्पन्दनों का स्पष्ट अनुभव होता है, उसे वहां प्रकाश दीखने लगता है तब मानना चाहिए कि वह केन्द्र सक्रिय हुआ है। किन्तु एक चैतन्यकेन्द्र के सक्रिय होने पर सारे चैतन्यकेन्द्र सक्रिय नहीं हो जाते। दूसरे चैतन्यकेन्द्र निष्क्रिय पड़े रहते हैं। यह कसौटी है कि जहां स्पन्दनों का अनुभव हो, प्रकाश दीखे, वे चैतन्यकेन्द्र सक्रिय हैं। जहां कुछ भी अनुभव नहीं होता, वे चैतन्यकेन्द्र निष्क्रिय हैं। जो सक्रिय हैं, उन्हें और अधिक सक्रिय बनाना और जो निष्क्रिय हैं उन्हें सक्रिय बनाना, यह मंत्र-साधना के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण बात है। मंत्र के द्वारा ऐसा किया जा सकता है। मन के प्रकाश से उन केन्द्रों को प्रकाशित करने के द्वारा ऐसा किया जा सकता है। जब तक हमारे चैतन्यकेन्द्र सक्रिय नहीं होंगे, जब तक हमारी शक्ति के मूल स्रोत या प्राणधारा को स्वीकार करने वाले केन्द्र अपना काम नहीं करेंगे तब तक विद्युत् का पूरा प्रवाह हमें उपलब्ध नहीं होगा। ऐसी स्थिति में मन भी शक्तिशाली नहीं बनेगा।

मन को शक्तिशाली बनाने के लिए चैतन्यकेन्द्रों पर ध्यान और चैतन्यकेन्द्रों में मंत्र की आराधना—दोनों बहुत महत्त्वपूर्ण तथ्य हैं।

अपान प्राणधारा से वाणी प्रस्फुटित होती है अथवा शक्तिकेन्द्र से वाक् प्रस्फुटित होती है। वह ध्वनित नहीं होती, सुनाई नहीं देती, उच्चारित नहीं होती किन्तु उसका पहला प्रस्फुटन शक्तिकेन्द्र से होता है, अपान प्राण की मर्यादा में होता है। बीज अंकुरित नहीं होता, किन्तु उसका प्रस्फुटन हो जाता है। मंत्र की उपासना करने वाले व्यक्ति सबसे पहले अपना ध्यान केन्द्रित करते हैं—शक्तिकेन्द्र पर। वे अपने मन का नियोजन शक्तिकेन्द्र पर करते हैं। जब शक्तिकेन्द्र से वाक् का, मंत्रों के शब्दों का प्रस्फुटन शुरू होता है तब वह आरोहण करते-करते स्वास्थ्यकेन्द्र, तैजसकेन्द्र, आनन्दकेन्द्र, प्राणकेन्द्र, दर्शनकेन्द्र और ज्योतिकेन्द्र तक पहुंचता है और विशुद्धिकेन्द्र तक आते-आते शब्द की सीमा समाप्त हो जाती है। आगे वह मंत्र प्राण की सीमा में, मन की सीमा में चला जाता है, सक्रियता उत्पन्न करता है और सारे तंत्र को शक्तिशाली बना देता है।

मंत्र का पहला तत्त्व है—शब्द और शब्द से अशब्द। शब्द अपने स्वरूप को [illegible] प्राण में विलीन हो जाता है, मन में विलीन हो जाता है तब वह अशब्द बन जाता है।

मंत्र का दूसरा तत्त्व है—संकल्प। मंत्र-साधक की संकल्प-शक्ति दृढ़ होनी चाहिए। यदि संकल्प-शक्ति शिथिल है, दुर्बल है तो मंत्र की उपासना उतना फल नहीं दे सकती, जितने फल की अपेक्षा की जाती है। मंत्र-साधक में विश्वास की दृढ़ता होनी चाहिए। उसकी श्रद्धा और इच्छाशक्ति गहरी होनी चाहिए। उसका [illegible] होना चाहिए। उसमें यह भावना होनी चाहिए, आत्म-[illegible] कि जो कुछ वह कर रहा है, अवश्य ही वह फलदायी होगा। [illegible] अनुष्ठान में [illegible] सफल होगा। सफलता में काल की अवधि का [illegible] है। किसी को एक महीने में, किसी को दो-चार महीनों में और [illegible]। किसी व्यक्ति को पूर्ण [illegible] मिलती है और किसी को कम [illegible] है। इसके अनेक कारण हैं। किन्तु प्रत्येक मंत्र-साधक [illegible] कि मैं अपने अनुष्ठान में [illegible]

[illegible]

वाला पूरे आत्मविश्वास के साथ खेती करता है कि अनाज अवश्य ही होगा। कभी अनाज न भी हो, पर उसका आत्मविश्वास यही रहता है कि अनाज होगा। असफलता कोई कठिनाई नहीं है, कठिनाई है आत्म-विश्वास का न होना। असफलता सदा नहीं होती। आत्मविश्वास होता है तो असफलता सफलता मे परिवर्तित भी हो सकती है। जो एक बार असफल रहता है वह दूसरी बार सफल भी हो सकता है। किन्तु जो सदेहो के जाल मे फसकर सफलता की ओर कदम ही नहीं बढाता वह जीवन मे कभी सफल नहीं हो सकता। सफलता की मूल कुजी है—आत्म-विश्वास। जिस व्यक्ति मे गहरा आत्म-विश्वास होता है वह व्यक्ति अपनी आराधना में सफल हो जाता है।

मत्र का तीसरा तत्त्व है—साधना। शब्द भी हैं, आत्म-विश्वास भी है किन्तु साधना के अभाव मे मत्र फलदायी नही हो सकता। जब तक मत्र-साधक आरोहण करते-करते मत्र को प्राणमय न बना दे तब तक वह सतत साधना करता रहे। वह निरंतरता को न तोडे। जब तक वह हिमालय के उच्चतम शिखर पर न पहुच जाए तब तक वह आरोहण के क्रम को न छोडे, उसमे शिथिलता न आने दे। मन शिथिल होते ही आरोहण का प्रयत्न छूट जाता है। तब सफल होने की बात ही प्राप्त नहीं होती। साधना मे निरन्तरता और दीर्घकालिता—दोनो अपेक्षित हैं। अभ्यास को प्रतिदिन दोहराना चाहिए। आज आपने ऊर्जा का एक वातावरण तैयार किया। कल उस प्रयत्न को छोड़ देते हैं तो वह ऊर्जा का वायुमडल स्वत. शिथिल हो जाता है। एक मत्र-साधक तीस दिन तक मत्र की आराधना करता है और इकतीसवें दिन वह उसे छोड देता है और फिर बत्तीसवें दिन उसे प्रारभ करता है तो मत्रशास्त्र कहता है कि उस साधक की मत्र-साधना का वह पहला दिन ही मानना चाहिए। वहा से फिर गणना प्रारभ करनी चाहिए। तीस दिन की साधना समाप्त। अब इकतीसवा दिन पहला दिन बन जाता है। इसलिए निरतरता होनी चाहिए। एक दिन भी बीच में न टूटे।

साधना का काल दीर्घ होना चाहिए, लबा होना चाहिए। ऐसा नही हो कि काल छोटा हो। दीर्घकाल का अर्थ है जब तक मत्र का जागरण न हो जाए, मत्र वीर्यवान् न बन जाए, मत्र चैतन्य न हो, जो मत्र शब्दमय था वह एक ज्योति के रूप मे प्रकट न हो जाए, तब तक उसकी साधना चलती रहे। जब तक ज्योतिकेन्द्र मे मत्र प्रकाशमय, ज्योतिर्मय और तेजमय न बन जाए तब तक साधना होनी चाहिए, तब तक आरोहण होना चाहिए। यही है दीर्घकालिता।

जब तक मत्र के तीनों तत्त्वों—शब्द, संकल्पशक्ति और साधना का समुचित योग नही होता तब तक मत्रसाधक सत्य-सकल्प नहीं होता। सत्य-सकल्प का अर्थ है—सकल्प की सिद्धि कर लेना, सकल्प का सफल हो जाना, सकल्प का यथार्थ बन जाना। कल्पना से सकल्प और सकल्प से यथार्थ। सकल्प और यथार्थ की दूरी समाप्त

हो जाए।

जिस मंत्र के द्वारा जो कार्य संभव होता है, उसका संकल्प किया और कालान्तर में वह यथार्थ बनकर प्रत्यक्ष हो गया—इस भूमिका में पहुंचकर ही मंत्र-चिकित्सा के द्वारा मन की बीमारियों को मिटाया जा सकता है। इस स्थिति में ही मन के संक्लेशों की चिकित्सा की जा सकती है। वे संक्लेश मिट सकते हैं। मन तब पूरा स्वस्थ बन जाता है। जब व्यक्ति का मन स्वस्थ होता है तब उसमें धर्म का अवतरण होने लगता है। यह सहज होता है, विशेष प्रयत्न की आवश्यकता नहीं होती। उस समय ऐसा लगता है कि किसी दिव्य-शक्ति का प्रकाश, कोई प्रसाद या अनुग्रह अपने-आप बरस रहा है और आत्मा में प्रवेश कर रहा है। इसे हम किसी नाम से पुकारें। ईश्वर के कर्तृत्व में विश्वास करने वाला मान ले कि ईश्वर का प्रसाद बरस रहा है, अनुग्रह बरस रहा है। अपने आत्म-कर्तृत्व में विश्वास करने वाला मान ले कि आत्मा का जागरण हो रहा है, चैतन्यकेन्द्रों की सारी शक्तियां पूरे शरीर में अवतरित हो रही हैं।

जब मन स्वस्थ, चेतना जागृत, आघात और प्रतिघात का प्रभाव समाप्त हो जाता है तब साधक सभी प्रकार की परिस्थितियों में संतुलित रहेगा। परिस्थितियों का प्रभाव उस तक पहुंचेगा ही नहीं। समस्या अपने स्थान पर खड़ी रहेगी, व्यक्ति पर हावी नहीं हो पाएगी। उस व्यक्ति को यह स्पष्ट दर्शन हो जाएगा कि समस्या यह है और समाधान यह है। समस्याओं से आक्रान्त होने वाले व्यक्ति, समस्याओं [illegible] व्यक्ति, समस्याओं का सही समाधान नहीं पा सकते। समस्याओं का समाधान वे ही व्यक्ति पा सकते हैं जो समस्याओं को तीसरे व्यक्ति [illegible] देखते हैं। यह रहा मैं, यह है मेरा मन और यह है समस्या। [illegible] बाहर नहीं है, मैं भीतर हूं। उसका समाधान यह है। [illegible] समस्याओं का समाधान दे सकते हैं। चोर और व्यक्ति को घर में घुसने [illegible] समस्याओं से मन आक्रान्त [illegible] हो सकता है। इन समस्याओं से [illegible] मन की सारी [illegible] समस्याओं का [illegible] भीतर प्रवेश न करें। [illegible] प्राप्त हो जाता है। [illegible] और समाधान [illegible] हो जाए, [illegible]

९

शारीरिक स्वास्थ्य और नमस्कार महामंत्र

- पीले रंग का ध्यान मस्तिष्क मे। बुद्धि का विकास होता है।
- सुनहरे रग का ध्यान आनन्दकेन्द्र मे। समस्या का समाधान होता है।
- रग की कमी का प्रभाव—
    - नीले रग की कमी से क्रोध अधिक।
    - लाल रग की कमी से आलस्य अधिक।

•

हमारा यह ससार रहस्यो से भरा पडा है। इसमे अनन्त रहस्य छिपे पडे है। वे ही व्यक्ति कुछ करने में सफल हो सकते हैं जो रहस्यों की खोज करते हैं। जिन लोगों ने रहस्यों को खोजा, उन लोगो ने ससार को बहुत बडी देन दी, ससार को आगे बढाया, विकास क्रम का आरोहण किया। आज का विज्ञान इसीलिए सफल हो रहा है कि वह प्रकृति के गूढतम रहस्यों की खोज मे सलग्न है। खोज का द्वार बद नहीं है। रहस्यो को खोजने के नये-नये प्रयत्न चल रहे हैं। अध्यात्म के आचार्यों ने भी अध्यात्म के गूढ रहस्यो का अनुसधान किया इसीलिए उन्होंने ऐसे नए-नए मार्ग सुझाए जो सचमुच आश्चर्यचकित करने वाले हैं। किन्तु एक अन्तर मैं देखता हूं। वैज्ञानिक अनुसधान आज भी चालू हैं, किन्तु अध्यात्म के अनुसधान अतीत के गर्त मे छिप गए। अनुसधान की प्रवृत्ति छूट गई। दरवाजा बन्द हो गया। इसलिए जो नये तथ्य सामने आने चाहिए थे, वे बन्द हो गए। जब मैं विज्ञान और अध्यात्म को समानान्तर दृष्टि से देखता हूं तो पाता हूं कि आज जो बहुत सारे तथ्य खोजे जा रहे हैं, वे अध्यात्म के आचार्यों ने पहले ही खोज लिये थे। एक छोटी-सी चर्चा करूं। जैन आगमो मे २८ लब्धियो की चर्चा है। उनमे एक है—संभिन्न-स्रोतोलब्धि। जिस

[illegible] को यह लब्धि उपलब्ध हो जाती है, वह व्यक्ति किसी भी इन्द्रिय से किसी भी इन्द्रिय का काम ले सकता है। आंख से देख सकता है, आंख से सुन सकता है, आंख से घ्राण-बोध कर सकता है। इसी प्रकार ये सारे काम कान या जीभ से कर सकता है। एक इन्द्रिय का संवेदन दूसरी इन्द्रिय का संवेदन पकड़ सकता है। अभी-अभी मैंने पढ़ा है कि आस्ट्रेलिया के एक वैज्ञानिक डॉ० बेरी रिचर्डसन ने एक [illegible] यंत्र का आविष्कार किया है, जिससे बहरा व्यक्ति त्वचा से सुन सकता है। यह संभिन्नस्रोतोलब्धि का एक उदाहरण है। इस लब्धि की जो प्राचीन व्याख्या थी, वह केवल ग्रन्थों तक ही सीमित रह गई थी, हमारे अनुभव से परे हो गई थी, उसका व्याख्या-सूत्र हमें वैज्ञानिक स्तर पर आज उपलब्ध हो गया। वैज्ञानिक ने इस यंत्र की उपयोगिता के विषय में कहा कि इस यंत्र का विकास होने पर दुनिया में कोई बहरा नहीं रहेगा।

जैसे-जैसे [illegible] के रहस्यों में हम गहरी डुबकियां लेते हैं, वैसे-वैसे नये-नये [illegible] हमारे सामने उद्घाटित होते हैं और प्रकृति के, पौद्गलिक जगत् के सारे [illegible] हमारी ज्ञान की सीमा में आ जाते हैं।

[illegible] प्रश्न है कि नमस्कार महामंत्र की आराधना के साथ वर्णों का समायोजन [illegible] क्या कोई सार्थक सम्बन्ध है? पांच पदों के क्रमशः पांच वर्ण हैं— [illegible] और कस्तूरी जैसा काला। एक-एक पद का एक-[illegible]

[illegible] है कि नमस्कार महामंत्र की आराधना अनेक [illegible] पांच पदों के रूप में भी की जाती है, [illegible] चैतन्य-केन्द्र में भी [illegible] और [illegible] भी की जाती है।

[illegible] — आत्म-जागरण। आत्म-जागरण का अर्थ है [illegible] आनन्द का जागरण, शक्ति का जागरण, अपने परमात्म- [illegible] का जागरण। आत्मा का जागरण — [illegible]

[illegible]

प्रश्न है—क्रोध की बीमारी, अभिमान या लोभ की बीमारी, भय या हीनभावना की बीमारी, क्षोभ या चिन्ता की बीमारी? जो बीमारी ज्यादा सताती है उसे पहले मिटाना है। यह सच है कि साधक का मूल लक्ष्य है—आत्मा का जागरण, पूरी चेतना को जगाना, शक्ति के स्रोतों को जागृत करना, आनन्द के महासागर का अवगाहन करना। किन्तु पहले यह भी जानना जरूरी हो जाता है कि कौन-सा आध्यात्मिक दोष अधिक सता रहा है और उसे समाप्त करने का रास्ता क्या है? जब यह बात मन में उपजती है तब पद्धति का प्रश्न सामने आता है।

एक बात है कि महामंत्र की आराधना से निर्जरा होती है, कर्म-क्षय होता है, आत्मा की विशुद्धि होती है। इस बात को मानकर आप जब चाहें, तब इसका जाप करें, जहां चाहें वहां इसकी माला फेरें, जिस दिशा में चाहें उस दिशा में मुंह कर इसे जपें। सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते—जब भी याद आए तब इसका स्मरण करें, जाप करें, ध्यान करें, कोई अड़चन नहीं है। किन्तु जब आप किसी एक रोग-विशेष को ही मिटाना चाहते हैं तो विशेष पद्धति का ही अनुसरण करना होगा। यदि आप भय की बीमारी मिटाना चाहते हैं तो नमस्कार महामंत्र की एक विशेष पद्धति का प्रयोग करना होगा और यदि आप चिन्ता या क्षोभ की चिकित्सा नमस्कार महामंत्र द्वारा करना चाहेंगे तो दूसरी पद्धति का आलंबन लेना होगा। एक ही पद्धति से सब रोग नहीं मिटाए जा सकते। प्रत्येक रोग के लिए नमस्कार महामंत्र की एक विशेष प्रकार की साधना करनी होगी, विशेष प्रकार के ध्वनि-तरंग और प्रकंपन पैदा करने होंगे, जिससे कि उस रोग की गांठ खुले और उस पर ऐसा तीव्र प्रहार हो कि वह गांठ समाप्त ही हो जाए। यह स्मृति में रहे कि जितनी बीमारियां, उतने ही इलाज।

मंत्रविद् आचार्यों ने नमस्कार महामंत्र के साथ रंगों का समायोजन किया। मंत्र के गूढ़तम रहस्यों को जानने वाले आचार्यों ने उन रहस्यों के आधार पर, एक-एक पद के लिए एक-एक रंग की समायोजना की। हमारा सारा जगत् पौद्गलिक है, भौतिक है। हमारा शरीर भी पौद्गलिक है। पुद्गल के चार लक्षण हैं—वर्ण, गंध, रस और स्पर्श। सारा भू-वलय, सारा मूर्त संसार वर्ण, गंध, रस और स्पर्श के प्रकंपनों से प्रकंपित है। वर्ण (रंग) से हमारे शरीर का बहुत निकट का संबंध है। वर्ण से हमारे मन का, आवेगों का, कषायों का बहुत बड़ा संबंध है। शारीरिक स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य, मन का स्वास्थ्य और अस्वास्थ्य, आवेगों की कमी और वृद्धि—ये सब इन रहस्यों पर निर्भर हैं कि हम किस प्रकार के रंगों का समायोजन करते हैं और किस प्रकार के रंगों से हम अलगाव या संश्लेष करते हैं। नीला रंग शरीर में कम होता है तब क्रोध अधिक आता है। नीले रंग की पूर्ति हो जाने पर गुस्सा कम हो जाता है। श्वेत रंग की कमी होती है तब अस्वास्थ्य बढ़ता है। लाल रंग की कमी होने पर आलस्य और जड़ता पनपती है। पीले रंग की कमी होने पर

ज्ञान-तन्तु निष्क्रिय बन जाते हैं। काले रंग की कमी होने पर प्रतिरोध की शक्ति कम हो जाती है। मंत्रशास्त्र कहता है—जब ज्ञानतंतु निष्क्रिय हो जाएं तो ज्ञान-केन्द्र में दस मिनिट तक पीले रंग का ध्यान करें। ज्ञानतंतु सक्रिय हो जायेंगे। व्यक्ति बहुत बड़ी समस्या में उलझा हुआ है, समाधान प्राप्त नहीं हो रहा है तो वह आनन्दकेन्द्र (हृदय) में दस मिनिट तक पीले रंग, सुनहले रंग का ध्यान करे। समाधान सामने दीखने लगेगा।

रंगों के साथ मनुष्य के मन का, मनुष्य के शरीर का कितना गहरा सम्बन्ध है, उसे जब तक हम जान नहीं लेते तब तक नमस्कार महामंत्र की रंगों के साथ साधना करने की बात हमारी समझ में नहीं आ सकती।

हम ज्ञानकेन्द्र पर 'णमो अरहंताणं' का ध्यान श्वेत वर्ण के साथ करते हैं। श्वेत वर्ण हमारी आन्तरिक शक्तियों को जागृत करने वाला होता है। हमारे मस्तिष्क में ग्रे रंग, धूसर रंग का एक द्रव पदार्थ है। वह समूचे ज्ञान का संवाहक है। पृष्ठरज्जु में भी वह पदार्थ है। मस्तिष्क में अर्हत् का धूसर रंग के साथ, श्वेत वर्ण के साथ ध्यान करते हैं। इससे ज्ञान की सोयी हुई शक्तियां जागृत होती हैं, चेतना का जागरण होता है। इसीलिए इस पद की आराधना के साथ ज्ञानकेन्द्र और सफेद वर्ण की समायोजना की गई है। मंत्रशास्त्र का यह अभिमत है कि [illegible] कोई ध्यान करना चाहे तो उसे श्वेत वर्ण का ध्यान करना चाहिए। सफेद वर्ण स्वास्थ्यदायक होता है, स्वास्थ्य का प्रतीक होता है। पता नहीं [illegible] ने सफेद गोलियों का चुनाव क्यों किया? उनकी सारी चीजें सफेद हैं। [illegible] दवा रोग-निवारण में काम करेगी, साथ-साथ [illegible] उसका सहयोग करेगा।

'णमो सिद्धाणं' का ध्यान दर्शनकेन्द्र में लाल वर्ण के साथ किया जाता है। [illegible] वर्ण। दर्शनकेन्द्र बहुत ही महत्त्वपूर्ण चैतन्यकेन्द्र है। लाल-वर्ण हमारी आन्तरिक दृष्टि को जागृत करने वाला है। तृतीय नेत्र, त्रिकुटी [illegible] और उसके [illegible] को निर्मित करने के लिए लाल रंग बहुत ही महत्त्वपूर्ण [illegible] बनाता है। इस रंग की यही विशेषता है कि [illegible] आलस्य का अनुभव हो, जड़ता आ [illegible] लाल रंग का ध्यान करें। [illegible] नहीं कर रहा हूं। [illegible] की बात कर रहा हूं। [illegible] को जागृत करने और [illegible] आन्तरदृष्टि का विकास [illegible] है। 'णमो सिद्धाणं' का [illegible] हमारी आन्तरिक दृष्टि को

आमुख करने का अनुक्रम साधन है । यह एक मार्ग है । किसको कब सिद्धि होती है, यह उसके प्रयत्न की सफलता पर निर्भर करता है । इतना निश्चित है कि यह मार्ग वहां पहुंचाता है ।

'णमो आयरियाणं' मंत्र-पद है । इसका रंग पीला है । यह रंग हमारे मन को सक्रिय बनाता है । इसका स्थान है 'विशुद्धिकेन्द्र' । यह स्थान 'चन्द्रमा' का है । हमारे शरीर में पूरा सौरमंडल है सूरज है, चांद है, बुध है, राहु है, मंगल है । सारे ग्रह हैं । हस्तरेखा विशेषज्ञ हाथ की रेखाओं के आधार पर नौ ग्रहों का ज्ञान कर लेते हैं । ललाट-विशेषज्ञ ललाट पर खिंचने वाली रेखाओं के आधार पर और योग के आचार्य चैतन्यकेन्द्रों के आधार पर नौ ग्रहों का ज्ञान कर लेते हैं । नौ ग्रह हमारे शरीर में हैं । तैजसकेन्द्र सूर्य का स्थान है । विशुद्धिकेन्द्र चन्द्रमा का स्थान है । ज्योतिषी चन्द्रमा के माध्यम से व्यक्ति के मन की स्थिति को पढ़ता है । चन्द्रमा और मन का संबंध है । जैसी स्थिति चन्द्रमा की होती है वैसी स्थिति मन की होती है । मन का स्थान चन्द्रमा का स्थान है । 'णमो आयरियाणं' का ध्यान विशुद्धिकेन्द्र पर पीले रंग के साथ किया जाता है । यह चैतन्य केन्द्र हमारी भावनाओं का नियामक है, हमारे मन का नियामक है । तैजसकेन्द्र वृत्तियों को उभारता है और विशुद्धिकेन्द्र उन पर नियंत्रण करता है । शरीरशास्त्री मानते हैं कि थाइराइड ग्लैण्ड वृत्तियों पर नियंत्रण करने वाली ग्रन्थि है । इससे आवेग भी नियंत्रित होते हैं । इस ग्रन्थि का स्थान है कंठ । रंग के साथ इस केन्द्र पर 'आचार्य' का ध्यान करने पर हमारी वृत्तियां शांत होती हैं, वे पवित्रता की दिशा में सक्रिय बनती हैं । विशुद्धिकेन्द्र पवित्रता की संवृद्धि करने वाला केन्द्र है । यहां मन पवित्र होता है, निर्मल होता है ।

'णमो उवज्झायाणं'—यह मंत्र-पद है । इसका रंग है नीला । इसका स्थान है आनन्दकेन्द्र । नीला रंग शांति देने वाला होता है । यह रंग समाधि, एकाग्रता पैदा करता है और कषायों को शांत करता है । नीला रंग आत्म-साक्षात्कार में सहायक होता है ।

णमो लोए सव्वसाहूणं'—यह मंत्र-पद है । इसका रंग है—काला । इसका स्थान है शक्तिकेन्द्र । शक्तिकेन्द्र का स्थान या पैरों के स्थान पर काले वर्ण के साथ इस मंत्र-पद की आराधना की जाती है । काला वर्ण अवशोषक होता है । काला छाता क्यों रखते हैं ? सर्दी में काले-नीले रंग के कपड़े क्यों पहने जाते हैं ? न्यायालयों में वकील और न्यायाधीश काला कोट क्यों पहनते हैं ? यह सब इसलिए कि काला रंग अवशोषक होता है । वह बाहर के प्रभाव को भीतर नहीं जाने देता । काला वर्ण बहुत महत्त्वपूर्ण वर्ण है ।

नमस्कार महामंत्र के पांच पदों के साथ पांच वर्णों का चुनाव बहुत महत्त्वपूर्ण है, गूढ़ है, रहस्यमय है । मैंने केवल दिशा-संकेत मात्र किया है । यह इसलिए

में हम आगे बढ़ते जाएंगे और एक दिन गन्तव्य तक पहुंच जाएंगे। जिस ध्येय की प्राप्ति के लिए हमने साधना प्रारम्भ की है, वह ध्येय उपलब्ध हो जाएगा। ध्येय और ध्याता के बीच कोई दूरी नहीं रहेगी। इतना दृढ़ विश्वास जब व्यक्ति की चेतना में जाग जाता है तो ये शक्तियां निश्चित ही उसे प्राप्त हो जाती हैं, परिणाम उसके पैरों में लुठने लगता है और वह व्यक्ति स्वयं परिणाममय बन जाता है।

चावल कच्चा है। आंच पर चढ़ाया। पकने लगा। ठीक समय हुआ और वह सिद्ध हो गया। जितने भी खाने के पदार्थ हैं, पकने पर सब सिद्ध होते हैं। ध्यान भी सिद्ध होता है और मंत्र की आराधना भी सिद्ध होती है, साधना चरम बिन्दु तक पहुंचती है। तब निश्चित ही सिद्ध होती है। किन्तु साधना और सिद्धि के बीच की जो दूरी है, उसे बहुत समझदारी के साथ सम्पन्न करना चाहिए। मध्यावधि की यह यात्रा बहुत सोच-समझकर होनी चाहिए। यह यात्रा का विवेक निष्पत्ति को उपलब्ध कराने वाला विवेक है। यदि यात्रा का विवेक ठीक नहीं होता है तो निष्पत्ति कभी नहीं हो सकती। यात्रा यदि निश्चित दिशा में चलती है तो निष्पत्ति निश्चित ही होनी है। इसमें अविश्वास करने की कोई बात नहीं है।

मंत्र की आराधना की अनेक निष्पत्तियां हैं। वे निष्पत्तियां आंतरिक भी हैं और बाह्य भी हैं। मानसिक भी हैं और शारीरिक भी हैं। मंत्र की आराधना से जब मंत्र सिद्ध होने लगता है तब कुछ निष्पत्तियां हमारे सामने प्रकट होती हैं। पहली निष्पत्ति है—मन की प्रसन्नता। जैसे-जैसे मंत्र सिद्ध होने लगता है, मन में प्रसन्नता आने लगती है। हर्ष नहीं, प्रसन्नता। हर्ष में और प्रसन्नता में बहुत बड़ा अन्तर है। किसी प्रिय वस्तु की उपलब्धि होती है तब व्यक्ति को हर्ष होता है। जहां हर्ष होता है वहां शोक भी अवश्य होगा। दोनों साथ-साथ चलते हैं। यह न मानें कि हर्ष तो हो और शोक न हो। यह भी नहीं हो सकता कि शोक हो और हर्ष न हो। कभी हर्ष होगा तो कभी शोक भी होगा और कभी शोक होगा तो कभी हर्ष भी होगा। हर्ष और शोक एक द्वन्द्व है। मंत्र की आराधना के द्वारा जो प्राप्त होता है वह है चित्त की प्रसन्नता, मन की निर्मलता। प्रसन्नता हमारे अन्तःकरण की निर्मलता है। इसमें मैल का अवकाश ही नहीं रहता। न हर्ष का मैल होता है और न शोक का मैल होता है। कोई मैल नहीं रहता। सारे मैल धुल जाते हैं। न राग का मैल और न द्वेष का मैल। मन बिलकुल निर्मल और प्रसन्न।

महामंत्र की आराधना की पहली निष्पत्ति या पहला परिणाम है—मन की प्रसन्नता, चित्त की निर्मलता।

इसका दूसरा परिणाम है—चित्त की सन्तुष्टि। बिना किसी उपलब्धि के भी मन सन्तुष्ट हो जाता है। जो संतोष पदार्थ की उपलब्धि के पश्चात् होता है, कुछ मिलने पर होता है, वह वास्तव में संतोष नहीं होता, वह एक वासना की तृप्ति-

विकास होता है। आभामंडल लेश्याओं का योग और एक विचित्र प्रकार का ओरा—ये सारे हमारे शरीर के आसपास, चारों ओर एक वलयाकार में बन जाते हैं।

संकल्प-शक्ति का बहुत बड़ा महत्त्व है। साधना की यह धुरी है। चाहे आप प्रेक्षा का अभ्यास करें, दीर्घश्वास का अभ्यास करें, शरीर-प्रेक्षा या चैतन्यकेन्द्र-प्रेक्षा का अभ्यास करें, लेश्याओं का ध्यान करें या और कुछ भी प्रयोग करें, प्रत्येक प्रयोग की पृष्ठभूमि में जिस सामग्री की जरूरत है, उस सामग्री का सबसे महत्त्वपूर्ण उपकरण है—संकल्प-शक्ति, इच्छा-शक्ति। जब तक संकल्प-शक्ति का विकास नहीं होता तब तक प्रेक्षा-ध्यान के अग्रिम अभ्यास में आने वाले अवरोधों को नहीं मिटाया जा सकता, आने वाली बाधाओं और विघ्नों का निराकरण नहीं किया जा सकता। एक विघ्न आता है और घुटने टिक जाते हैं। एक बाधा आती है और व्यक्ति चलते-चलते रुक जाता है। एक बाधा आती है और साधना की दिशा ही बदल जाती है। यह दिशा का परिवर्तन, गति का परिवर्तन, स्थिति का परिवर्तन *बाधाओं के कारण होता है। इसलिए साधना करने वाले व्यक्ति को पहले यह* सोचना चाहिए कि बाधाओं का निवारण कैसे किया जाए। जब तक साधक बाधाओं के निवारण का उपाय साथ लेकर नहीं चलता तब तक वह ठीक नहीं चल पाता। बाधाओं के निवारण का उपाय हमारे हाथ में होना चाहिए।

बाधाएं आंतरिक भी हैं और बाह्य भी हैं। भीतर से—मन से आने वाली बाधाएं भी हैं और वातावरण से आने वाली बाधाएं भी हैं। दोनों बाधाओं के बीच से व्यक्ति को गुजरना होता है। इसके लिए पूरी तैयारी और सामग्री चाहिए। उस सज्जा का सबसे पहला भाग है—संकल्प-शक्ति का विकास, इच्छा-शक्ति का विकास।

एक शिष्य ने अपने गुरु से पूछा :

'गुरुदेव! सामने इतनी बड़ी चट्टान है। क्या इस पर भी किसीका शासन है?'

गुरु ने कहा—'हां, है।'

'किसका शासन है?'

'लोहे का। हथौड़ा या छैनी जब इस पर लगती है तब यह चूर-चूर हो जाती है।'

'लोहे पर किसका शासन है?'

'शिष्य! लोहे पर आग का शासन है। कितना भी लोहा हो आग उसे पिघला देती है।'

'गुरुदेव! आग इतनी शक्तिशाली है, उसपर किसका शासन है?'

'शिष्य! आग पर पानी का शासन है।'

'गुरुदेव! पानी पर किसका शासन है?'

जाता है। सकल्प-शक्ति के द्वारा ऐसे परमाणुओं का सक्रमण होता है कि होने वाली दुर्घटना भी टल जाती है।

मंत्र की साधना का बहुत बड़ा परिणाम, उपलब्धि या निष्पत्ति है—संकल्प-शक्ति का विकास। इसके साथ हम प्राण को भी समझें।

हमारे शरीर में सबसे अधिक सक्रियता पैदा करने वाला है—तैजस शरीर, विद्युत् शरीर। जब तक हमारा यह तैजस शरीर शक्तिशाली नहीं होता तब तक कोई भी प्राण शक्तिशाली नहीं होता। प्राण दस हैं—पांच इन्द्रियों के पांच प्राण, मन प्राण, वचन प्राण, शरीर प्राण, श्वास प्राण और आयुष्य प्राण। ये दसों प्राण तैजस की शक्ति के बिना निष्प्राण हो जाते हैं। सारे चमत्कार विद्युत् से निष्पन्न होते हैं। वर्तमान के विज्ञान ने जो भी विकास किया है वह सारा विद्युत् का ऋणी है। सारा विकास ऊर्जा के आधार पर हुआ है। आज यदि विद्युत् न हो तो सारा विज्ञान ही समाप्त हो जाए। हमारा शरीर सदा से वैज्ञानिक है। इस शरीर में वैज्ञानिक युग अनादिकाल से चल रहा है। आज के वैज्ञानिक युग की आयु ४००-५०० वर्षों की है, किंतु मनुष्य के शरीर में वैज्ञानिक युग की आयु अनन्त काल की है।

हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका विद्युत् पैदा करती है। हमारा मस्तिष्क धारावाही विद्युत् पैदा करता है। हमारे शरीर का कण-कण साधर्पणिक विद्युत् उत्पन्न करता है। इस समूचे विद्युत् का जेनरेटर है—तैजस शरीर। यह शरीर जब शक्तिशाली होता है तब सब ठीक चलता है और यह शरीर जब मन्द हो जाता है तब सब कुछ गड़बड़ा जाता है।

मंत्र की आराधना के द्वारा तैजस शरीर को सक्रिय बनाया जाता है। मंत्र की आराधना का सबसे पहला प्रभाव पड़ता है तैजस शरीर पर। जब तक तैजस शरीर तक मंत्र नहीं पहुंचता तब तक मंत्र सफल भी नहीं होता। वह मात्र शब्द का पुनरावर्तन बनकर रह जाता है।

मंत्र की सफलता का सूत्र है—शब्द को आगे पहुंचाते-पहुंचाते स्थूल शरीर की सीमाओं को पार कर, तैजस शरीर की सीमा में पहुंचा देना।

जब मंत्र तैजस शरीर तक पहुंच जाता है तब वहां उसकी शक्ति बढ़ जाती है। फिर तैजस शरीर से जो प्राणधारा निकलती है उससे मंत्र शक्तिशाली बन जाता है। इस स्थिति में शरीर की शक्ति बढ़ जाती है, मन की शक्ति बढ़ जाती है और संकल्प की शक्ति बढ़ जाती है। मन की सारी क्रियाओं की शक्ति बढ़ जाती है।

यह सारा का सारा आराधना के द्वारा संभव हो सकता है। केवल सामर्थ्य से कुछ नहीं होता। सफलता के लिए अभ्यास अपेक्षित होता है। आप यह न सोचें कि मंत्र के विषय में सुनने, जानने मात्र से निष्पत्तियां मिल जाएंगी। आकाश की ओर

है। भाषा के द्वारा विचारों का विनिमय होता है। इतनी बात तो समझ में आ जाती है, किन्तु एक-एक अक्षर के अनन्त पर्याय हैं, उसकी अनन्तशक्ति है, यह बात समझ में नहीं आती। एक आचार्य ने इस तथ्य को समझाने के लिए एक ग्रन्थ का निर्माण किया। उसका नाम है—'अष्टलक्षी'। उसमें आठ अक्षरों का प्रयोग है—'राजा नो ददते सौख्यम्'। आचार्य ने इस पद के आठ लाख अर्थ किए हैं। उन्होंने लिखा है—'मेरे जैसा अल्पज्ञानी व्यक्ति इसके आठ लाख अर्थ कर सका है। कोई सिद्ध ज्ञानी इसके अनन्त अर्थ कर सकता है।'

यह एक छोटा-सा उदाहरण है। इससे हम अक्षर की अनन्त क्षमता को समझ सकते हैं। मंत्र छोटा होता है, पर उसमें अनन्त शक्ति होती है। बरगद का बीज बहुत छोटा होता है। प्रारंभ में कोई यह कल्पना नहीं कर सकता कि इतना छोटा बीज इतना बड़ा वटवृक्ष बन जाएगा, जिसकी छांह में सैकड़ों घोड़े बांधे जा सकते हैं। इतने बड़े-बड़े बरगद के पेड़ भारत में मौजूद हैं।

आप स्वयं इसका अनुभव करें। 'र', 'र' को लें। इनका उच्चारण करें। मात्र उच्चारण, मात्र ध्वनि। इसके साथ मंत्र की भावना न भी जोड़ें, इसके साथ अन्तर्ध्वनि को न भी जोड़ें, एकाग्रता को न भी जोड़ें, केवल र, र, र की ध्वनि करते जाएं। कुछ ही समय के बाद आप अनुभव करने लगेंगे कि आपके शरीर में उष्मा बढ़ रही है, ताप बढ़ रहा है। शरीर जलने लगा है।

ध्यान-काल में कई प्रकार के अनुभव होते हैं। किसी साधक को सूर्य का प्रतिबिम्ब दीखने लगता है तो किसी को चन्द्रमा का पूर्ण बिम्ब दृग्गोचर होता है। किसी को अत्यधिक गर्मी का अनुभव होता है तो किसी को अत्यधिक शीत का अनुभव होता है। और भी अनेक प्रकार के अनुभव होते हैं। ये सारे अनुभव संकल्पशक्ति, वर्णशक्ति या प्रेक्षाशक्ति के परिणाम हैं। ये अनुभव बहुत बड़े अनुभव नहीं हैं। ये परिणाम प्रारंभिक हैं। ये बहुत बड़ी उपलब्धियां नहीं हैं। जब हमने यह मान लिया कि हमारे स्थूल शरीर के भीतर तैजस शरीर बैठा है, तेज का पुंज विद्यमान है, उसके जागरण से यदि कुछ प्रकाश मिल जाए तो कौन-सी बड़ी बात है? कोई बड़ी बात नहीं है। यह जो नहीं दीखती वह बड़ी बात है। जो दीखती है वह बड़ी बात नहीं है। जब हम बाहर ही बाहर देखते हैं, मन को भीतर ले जाते ही नहीं, मन को दौड़ाते ही रहते हैं, कभी रोकते नहीं, तब कुछ भी दिखाई नहीं देता। जब हम मन की दिशा को मोड़ देते हैं, बाहर से भीतर ले जाते हैं, उसकी दौड़ को समाप्त कर उसे एक खूंटे से बांध देते हैं, तब यह प्रकाश दीखना सामान्य हो जाता है। यद्यपि यह सामान्य-सी बात है, फिर भी इसका अपना महत्त्व है, क्योंकि इससे आदमी का दृष्टिकोण बदल जाता है। आदमी की श्रद्धा गाढ़ हो जाती है, आस्था दृढ़ हो जाती है। जब तक अपना कोई अनुभव नहीं होता तब तक आदमी को लगता है कि उसकी साधना पूरा नहीं ला रही है। अनुभव

छोटा हो या बड़ा, वह बहुत काम का होता है।

जीवन की दिशा का परिवर्तन और दृष्टिकोण का परिवर्तन—यह प्रेक्षा-ध्यान का प्रयोजन है। प्रेक्षा-ध्यान से यह घटित होता है। मंत्र की आराधना भी प्रेक्षा-ध्यान का ही एक अंग है। प्रेक्षा-ध्यान की पूरी प्रक्रिया दृष्टिकोण बदलने की प्रक्रिया है। जब दृष्टि बदल जाती है तब जीवन की दिशा अपने-आप बदल जाती है, कुछ भी उपदेश की जरूरत नहीं होती।

मैंने यह अनुभव किया है कि साधना से सचमुच व्यक्ति बदल जाता है। यह बदलाव घटित होता है आन्तरिक परिवर्तन से। व्यक्ति में अनुभव जाग जाता है। अनुभव के आगे तर्क चलता नहीं। व्यक्ति कितना ही पढ़ा-लिखा या तार्किक हो, जब वह एक अनुभव की स्थिति से गुजर जाता है, तब उसके सारे तर्क निरस्त हो जाते हैं। अनुभव को उसे स्वीकार करना ही पड़ता है। तर्क उस अनुभव को नहीं मार सकते। एक व्यक्ति तर्क को सहारा बनाकर चला। साधना का क्रम चालू रहा। बहुत दिन उसे कुछ भी हाथ नहीं लगा। एक दिन ध्यान-काल में अकस्मात् कोई अनुभव जागा और उसकी तार्किक दृष्टि समाप्त हो गई। यह बदल

का कहीं पता ही नहीं लगता। हम सब इस स्थिति में जी रहे हैं। एक व्यक्ति एक किसी शास्त्र से उधार लेता है और दूसरों को बांट देता है। दूसरा व्यक्ति उसी चीज को दूसरों को बांट देता है। यह क्रम चलता रहता है। यह क्रम इतना दूर चला जाता है कि यह सोचने का मौका ही नहीं मिलता कि मूल क्या है ? आज के युग की सबसे बड़ी मांग या जरूरत यह है कि मूल पूंजी पर हमारा ध्यान केन्द्रित हो, अनुभव पर हमारा ध्यान केन्द्रित हो। हम महावीर को इसलिए तीर्थंकर मानते हैं कि उन्होंने अनुभव किया, साक्षात्कार किया और फिर लोगों को बताया। जितने अवतार, आचार्य, तपस्वी और साधक हुए हैं, उनकी वाणी को लोग इसलिए शिरोधार्य करते हैं कि उन्होंने सत्य का पहले साक्षात्कार किया, अनुभव किया और फिर लोगों को बताया। किन्तु आज लोग उधार ली हुई बातों के आधार पर अपनी यात्रा को चला रहे हैं। जीवन-यात्रा को ही नहीं, वे धर्म की यात्रा को भी उधार के बल पर ही चला रहे हैं। यह एक आश्चर्यकारी बात है।

साधना करने वाले लोग इस भ्रान्ति से निकलकर सत्य के साक्षात्कार की ओर चलने का संकल्प लेकर चलते हैं। वे मूल पूंजी को खोजने के लिए प्रयत्न करते हैं। केवल उधार से काम चलाने में उन्हें संतोष नहीं होता। वे मूल को पाने के लिए प्रयत्न करते हैं। दरवाजा खुलता है और गति प्रारंभ हो जाती है। किन्तु पहुंचना बहुत दूर है। एक चरण आगे बढ़ने-मात्र से लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो जाती। जब चरण निरन्तर चलते हैं तब लक्ष्य निकट आ जाता है।

मैंने पहले कहा था कि 'णमो अरहंताणं' के अक्षर-अक्षर का ध्यान करें। धीरे-धीरे चमकते हुए श्वेत वर्ण के अक्षर साक्षात् हो जाएंगे। इसके लिए निरन्तर अभ्यास करना होगा। अभ्यास-काल तीन महीने का भी हो सकता है और छह महीने का भी हो सकता है। और भी अधिक हो सकता है। धीरे-धीरे उसकी निष्पत्ति सामने आने लगेगी। उतावल न करें। उतावलापन साधना का विघ्न है। धैर्य अपेक्षित होता है। आज के युग की सबसे बड़ी बीमारी है—उतावलापन। आज के आदमी में धैर्य नहीं है। वह बीमार होता है प्रातःकाल और स्वस्थ हो जाना चाहता है शाम तक। प्रत्येक क्षेत्र में यह उतावलापन है। युग ने विकास किया है। युग की रफ्तार बढ़ी है। ऐसी स्थिति में आदमी इन्तजार करता रहे, यह संभव नहीं है। पहले के जमाने में आदमी घर से निकलता और दो-तीन महीनों के बाद कलकत्ता पहुंच जाता। आज का आदमी कलकत्ता जाने के लिए दो-तीन महीने तो क्या, दो-तीन दिन की भी प्रतीक्षा नहीं कर सकता। वह दो-तीन घंटों में ही वहां पहुंच जाना चाहता है और आज पहुंच भी जाता है। अब वह दो-चार मिनिट में पहुंचने की कल्पना कर रहा है। यह सच है। मैं एक बात बहुत स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि प्रेक्षा-ध्यान की साधना में, मंत्र की आराधना में हम वर्तमान युग के इस प्रभाव को, उतावलेपन को, अधैर्य को, काम में न लें।

यह शाश्वत सत्य है। शाश्वत सत्य के साथ कोई समझौता नहीं हो सकता, कोई परिवर्तन नहीं हो सकता। साधक धैर्य रखें, प्रतीक्षा करें, उतावले न हों। जो लक्ष्य चुना है, जीवन का ध्येय बनाया है, उस पर पूरे आत्म-विश्वास के साथ चलें, धैर्य से चलते जाएं, शक्ति का विकास करें। ऐसी स्थिति में निश्चित ही एक दिन लक्ष्य तक पहुंच जाएंगे।

११

ओम्

- अभिव्यक्ति के दो साधन—अक्षरश्रुत और अनक्षरश्रुत।
- शब्द ज्ञान का वाहक।
- शब्द पर प्रकाश डालने वाले दो शास्त्र—शब्दशास्त्र और मंत्र-शास्त्र।
- मंत्रशास्त्र के अनुसार शब्द की तीन अवस्थाएं—सजल्प, अन्तर्जल्प और ज्ञानात्मक।
- अक्षर के तीन प्रकार।
- नाद का महत्त्व।
- ओम् की निष्पन्नता के विविध दृष्टिकोण।
- ओम् एकाक्षरी मंत्र। इसके जाप से होने वाला लाभ।
- मंत्र-जप में उच्चारण का महत्त्व।
- ओंकार के साथ रंगों का योग।

•

'ओंकार बिंदुसंयुक्तं, नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव, ओंकाराय नमो नमः॥'

हम सब दो प्रकार के जगत् में जीते हैं। एक हमारा आध्यात्मिक जगत् है, आन्तरिक जगत् है और दूसरा बाह्य जगत्। अन्तर्जगत् में हम अकेले होते हैं और बाह्य जगत् में हमारा समाज होता है। हमारा ज्ञान का जीवन अन्तर् जगत् है। वह सदा भीतर रहता है, कभी बाहर नहीं आता। यदि मनुष्य कोरा ज्ञानी हो

होता तो वह नितांत अकेला होता। वह सामाजिक कभी नहीं बनता। हमारा सामाजिक जीवन बनता है भाषा के द्वारा, शब्द के द्वारा। ज्ञान और भाषा का जब से योग हुआ तब से मनुष्य बाह्य जगत् में आया और उसने अपना विस्तार किया। ज्ञान ने ज्ञान को विस्तार दिया, बाह्य जगत् का निर्माण किया और एक द्वैत पैदा किया। मनुष्य दो जगत् में जीने वाला प्राणी बन गया।

ज्ञान अपने-आप में स्वाप्य होता है। उसके द्वारा किसीको भी अभिव्यक्ति नहीं दी जा सकती? केवल जाना जा सकता है, पर अपना जाना हुआ दूसरे तक नहीं पहुंचाया जा सकता। ज्ञान जब दूसरे तक नहीं पहुंचता तब समाज नहीं बनता। समाज का मूल आधार है अभिव्यक्ति, ज्ञान का विनिमय, प्रत्येक के ज्ञान का दूसरे तक पहुंचना।

मध्य में तीन सेतु हैं—शरीर, वाणी और मन। ये अन्तर् जगत् के प्रवाह को बाह्य जगत् तक पहुंचाते हैं। अमूर्त जब मूर्त के साथ जुड़ता है, तब वह श्रुत बनता है। शास्त्र, आगम या वाङ्मय बनता है। मन, मन से आगे वाक् और वाक् से आगे काय—इन तीनों के क्रम जुड़े हुए हैं। मन में कोई विचार पैदा हुआ और वह वाक् में उतरा, वाङ्मय बना, वाणी में आया। उसे वाणी में आने के लिए काया के तत्र ने उसका पूरा सहयोग किया। उच्चारण के स्थान, जिनसे शब्द उच्चरित होते हैं, सक्रिय बने और मन का भाव प्रकट हो गया। जो अगम्य था वह गम्य बन गया, जो अन्तर् जगत् में था वह बाह्य जगत् में आ गया।

मैंने मन में सोचा—मुझे वहां जाना है। किंतु जब मैंने भाषा के द्वारा प्रकट कर दिया कि मुझे वहां जाना है, तब वह अन्तर् जगत् की घटना नहीं रही, वह बाह्य जगत् की घटना हो गई। मन की अगम्य बात दूसरों के लिए गम्य बन गई।

शब्द की शक्ति के द्वारा हमारा ज्ञान बाह्य जगत् में अवतरित होता है। यदि शब्द का वाहन न मिले तो ज्ञान कभी भी बाह्य जगत् में अपने अस्तित्व को प्रकट नहीं कर पाता। यह है ज्ञान और शब्द का संबंध।

शब्द पर शब्दशास्त्रियों ने काफी विमर्श किया है। दूसरी ओर मंत्रशास्त्रियों ने भी काफी विमर्श किया है। शब्द पर दो शास्त्र बहुत प्रकाश डालते हैं—शब्द-शास्त्र और मन्त्रशास्त्र। ज्ञान भीतर होता है। वह शब्द के माध्यम से बाहर आता है। ज्ञान भीतर पहुंचता है तब भी शब्द के माध्यम से पहुंचता है। दूसरा व्यक्ति मुझे कुछ बताता है, जिसे मैं नहीं जानता। वह बात मुझे शब्द के माध्यम से उप-लब्ध हुई। शब्द ने भीतर की यात्रा शुरू की और वह मेरे ज्ञान के साथ जुड़ गया। ज्ञान का स्पर्श कर अपने अर्थ को वहां तक पहुंचा दिया। यह प्रक्रिया है ज्ञान की बाहर से भीतर तक पहुंचने की। मेरे भीतर का ज्ञान भी इसी प्रक्रिया से दूसरे तक पहुंचता है। मेरा ज्ञान मेरे भीतर रहता है और दूसरे का ज्ञान दूसरे के भीतर रहता है, किंतु शब्द के माध्यम से हम ज्ञान का विनिमय कर देते हैं, एक-दूसरे के ज्ञान को अपना बना लेते हैं। यह हमारा ज्ञान-मीमांसा और शब्दशास्त्रीय मीमांसा का पक्ष है। इसका दूसरा पक्ष साधना का है, मंत्रशास्त्र का है। मंत्रशास्त्र के अनुसार शब्द की पहली अवस्था है—सजल्प, जो तेजस्वर में बोला जाता है। यह भाष्यावस्था—बोली जाने वाली अवस्था है। दूसरी अवस्था है—अन्तर्जल्प। जब शब्द बाहर सुनाई नहीं देता अथवा उच्चरित नहीं होता तब अन्तर्जल्प होता है। तीसरी अवस्था ज्ञानात्मक है। वहां अन्तर्जल्प भी समाप्त हो जाता है, भाषा ज्ञान के रूप में शेष रह जाती है। *मंत्रशास्त्र में वाक् को वैखरी, वाक्-प्रयोग (वचन योग) को मध्यमा और ज्ञानावरण के विलय या ज्ञान के उपयोग को पश्यंती* कहा जाता है। वह ज्ञान जब लब्धि में चला जाता है, ज्ञान की सहज क्षमता में

श्वास लेते हैं, इसीलिए हमारा तन्त्र निरन्तर गतिशील रहता है। योगशास्त्रीय गणना के अनुसार एक व्यक्ति एक दिन में इक्कीस हजार छह सौ श्वास-प्रश्वास लेता है। जब वह श्वास लेता है तब एक प्रकार की ध्वनि होती है। श्वास छोड़ता है तब भी ध्वनि होती है। श्वास छोड़ते समय 'ह' की और लेते समय 'स' की ध्वनि होती है। इन सहज दोनों ध्वनियों के आधार पर 'सोऽहं' का विकास हुआ। इसे 'अजपाजप' कहा जाता है। इसे जपने की जरूरत नहीं। यह बिना जपे जप हो जाता है, इसलिए इसका नाम 'अजपा' है। शिवस्वरोदय में 'हकार' को शिवरूप और 'सकार' को शक्तिरूप माना गया है। हठयोग में 'हकार' सूर्य या दक्षिण स्वर का प्रतिनिधित्व करता है और 'सकार' चन्द्र या बाएं स्वर का प्रतिनिधित्व करता है। इन दोनों का साम्य होने पर परमात्मभाव का विकास होता है। तन्त्रशास्त्र के अनुसार पूर्ण वर्णमाला ओंकार से उत्पन्न होती है। इसीलिए उसे 'मातृकासू' कहा जाता है।

'सोऽहं' का महत्त्व अपनी ध्वनिगत विशेषता के कारण है। प्राणशक्ति के साथ उसका स्वाभाविक संबंध है, इसलिए उसका महत्त्व है। उसके साथ भावना का संबंध भी जुड़ा हुआ है। 'सोऽहं' का अर्थ होता है—मैं वह हूं। जो परमात्मा है वह मैं हूं। इस भावनात्मक संबंध के कारण 'सोऽहं' एक बहुत शक्ति-शाली मंत्र बन गया। ध्वनिगत विशेषता और भावनात्मक संवेदना के कारण इसका स्थान महामंत्रों की कोटि में प्रस्थापित है।

'सोऽहं' में थोड़ा-सा परिवर्तन हुआ। 'सकार' को हटाया, 'हकार' को हटाया और 'ओम्' बन गया। 'सोऽहं' का परिवर्तित रूप है 'ओम्', जो भाषाशास्त्रीय दृष्टि और ध्वनि विश्लेषण के अनुसार 'सोऽहं' के बहुत निकट है। 'स' और 'ह' चले जाते हैं और शेष 'ओम्' रह जाता है। 'ओम्' हमारी प्राणगत ध्वनि है। प्राण के साथ सहज उच्चरित होने वाली ध्वनि है। इसलिए इसका बहुत मूल्य है। 'ओम्' का पर्याय शब्द है 'प्रणव'। महर्षि पतञ्जलि ने इसे पुरुष का वाचक बतलाया है। 'प्रणव' प्राण को देने वाला होता है। वह हमारी प्राणशक्ति को जागृत करता है। 'ओंकार' हमारी प्राणशक्ति को प्रज्वलित करने वाला है, इसलिए उसका बहुत मूल्य है। वैज्ञानिक युग में जितना ऊर्जा का मूल्य है उतना ही हमारी आंतरिक शक्ति के विकास में, जीवनतन्त्र के परिचालन में इसका बहुत बड़ा मूल्य है। इस प्राकृतिक मूल्य के साथ साधना की परंपराओं ने भावनात्मक मूल्य का भी योग किया है। वैदिक परंपरा में 'अ, उ, म,'—इन तीन अक्षरों के योग से 'ओम्' शब्द निष्पन्न होता है। 'अ' ब्रह्मा, 'उ' विष्णु और 'म' महेश—ये तीनों शक्तियां इसके साथ जुड़ी हुई हैं। वैदिक परंपरा का अनुयायी 'ओंकार' का जप करते समय अपनी प्राकृतिक प्राणशक्ति का उपयोग करता है और साथ-साथ अपने में ब्रह्मा, विष्णु और महेश की शक्ति का अनुभव करता है। एक ओर उसकी प्राणशक्ति

आशा नहीं कर सकते वह व्यक्ति सुषुम्णा या मध्यमार्ग में प्राणधारा प्रवाहित होने पर अपने-आप अच्छा आचरण करने लग जाता है। किसी उपदेश की जरूरत नहीं, किसीको समझाने की जरूरत नहीं। सुषुम्णा के जागरण द्वारा आचरण की शुद्धि अपने-आप हो जाती है और उसके जागरण में ओंकार के जप का बहुत बड़ा योग हो सकता है। ओंकार का जप तीनों स्थितियों में चलता है—वाक् के रूप में, वाक् से अन्तर् जल्प के रूप में और सुषुम्णा में प्रवेश कर ज्ञान के रूप में। जब हमारी चेतना प्राणधारा के साथ प्रवाहित होने लग जाती है उस स्थिति में व्यक्तित्व में सहज ही परिवर्तन घटित होता है, जिसकी हम पहले कल्पना भी नहीं कर सकते।

शब्द की शक्ति कम नहीं होती। उसकी ध्वनि-तरंगें बंद पड़े दरवाजों को खोल देती हैं, अज्ञान ज्ञात हो जाता है, शक्ति हीनता शक्तिस्रोत में बदल जाती है, दुःख सुख में बदल जाता है। भगवान महावीर ने गौतम गणधर को 'उप्पन्नेइ वा विगमेइ वा धुवेइ वा'—इस त्रिपदी का मंत्र दिया। इसके माध्यम से उनकी अन्तश्चेतना जाग उठी। उन्होंने समूचे श्रुत का अवगाहन कर लिया। ज्ञान के सब द्वार खुल गए। शब्द में उतर सकने वाला ज्ञान उनसे अज्ञात नहीं रहा। वे श्रुत के पारगामी बन गए।

चिलातीपुत्र एक बहुत बड़ा चोर था। उसने एक कन्या की हत्या कर डाली। हाथ में उसका सिर है और तलवार खून से सनी हुई है। जंगल में दौड़ा जा रहा है। पुलिस पीछा कर रही है। उसने देखा, एक साधु ध्यान-मुद्रा में खड़ा है। साधु के पास जाकर बोला—कुछ बताओ। साधु ने केवल तीन शब्द उच्चारित किए—उपशम, संवेग, संवर। इन तीन शब्दों का उच्चारण हुआ और चिलातीपुत्र एकदम बदल गया। वह चोर से साधु बन गया। मंत्र-शक्ति के द्वारा उसका रूप ही बदल गया। मंत्र के द्वारा प्रकट होने वाली ऊर्जा से व्यक्ति में जो रूपान्तरण होता है, यह हम जानते हैं और मानते भी हैं। हमारी कठिनाई यह है कि हम मानते ज्यादा हैं, जानते कम हैं। ओंकार का जप करने वाले भी ओंकार को मानते ज्यादा हैं, जानते कम हैं। दूसरे मंत्रों का जप करने वालों की भी यही दशा है। इसीलिए हमें शब्द की शक्ति में, मंत्र-शक्ति में विश्वास कम है। केवल मानने से काम नहीं चलेगा, कुछ जानें। एक मंत्र के साथ बहुत बातें जुड़ी हुई होती हैं। उन सबको जानना जरूरी होता है। ओंकार एकाक्षरी मंत्र है। यह कामना की पूर्ति करने वाला और मोक्ष देने वाला—दोनों है। इससे प्राणशक्ति का विकास होता है, इसलिए कामना पूरी होती है। इससे चित्त निर्मल होता है, इसलिए यह मोक्ष देने वाला है। हम किसी मंत्र की विशेषता से प्रभावित होकर उसका जप शुरू कर देते हैं। किन्तु पूरी जानकारी के अभाव में पूरा लाभ नहीं उठा पाते। मंत्र के जप का पहला तत्त्व है—उच्चारण कैसे करें? जब तक उच्चारण की बात समझ में नहीं आती तब तक

जो होना चाहिए वह नहीं होता। शब्द-शास्त्र के अनुसार उच्चारण के आठ स्थान हैं — उर, कंठ, सिर, जिह्वामूल, दांत, नासिका, ओष्ठ और तालु। किन्तु यह बहुत स्थूल जगत् की बात है। इससे पहले वह उच्चारण न जाने कितनी अवस्थाओं को पार कर जाता है। उसका प्रारंभ मूलाधार या शक्तिकेन्द्र से होता है। फिर वह तैजस-केन्द्र, आनन्दकेन्द्र और विशुद्धिकेन्द्र को पार कर तालु के पास आता है और दर्शनकेन्द्र—भृकुटि के मध्य तक पहुंच जाता है। उस स्थिति में उसकी तेजस्विता प्रकट होती है।। उच्चारण के बारे में जब सम्यग्ज्ञान नहीं होता तो जप से जिस लाभ की आशा की जाती है वह घटित नहीं होता। मंत्र-शास्त्र बतलाते हैं—भाष्य-जप से जो लाभ होता है उससे हजार गुना लाभ अन्तर् जप से होता है, और अन्तर् जप से जो लाभ होता है उससे हजार गुना लाभ मानसिक जप से होता है। जप की दूसरी दिशा है भावना का नियोजन। जप के साथ हमारा भावात्मक लगाव कैसा है? यदि हम केवल शब्द के साथ चलें, अर्थ की भावना न करें, तो जो लाभ मिलना चाहिए वह नहीं मिलता। जप की यात्रा शब्द से शुरू होती है। फिर शब्द छूट जाता है, केवल अर्थ शेष रह जाता है। हम श्रोती भावना को छोड़-कर अर्थ भावना तक पहुंच जाते हैं —ज्ञानात्मक स्थिति में पहुंच जाते हैं। उस समय [illegible] होता है—मन का जागरण होता है, उसकी तेजस्विता प्रकट होती है।

[illegible] का यथार्थ [illegible] से उसका जप और शक्तिशाली [illegible]

प्रश्न—ॐ के स्थान पर अर्हम् को महत्त्व देने का मूल कारण क्या है ?

उत्तर—ॐ का महत्त्व भी कम नहीं है और अर्हं का महत्त्व भी कम नहीं है। दोनों का अपना महत्त्व है। हमारा संसार सापेक्षता का संसार है। यहां किसी एक का असीम महत्त्व नहीं होता। प्राणशक्ति को जाग्रत करने के लिए अर्हं का जितना महत्त्व है उतना ॐ का नहीं है। जैन परम्परा में पंच परमेष्ठी की आराधना ॐ के रूप में की जाती है और नमस्कार मंत्र के रूप में भी की जाती है। इसकी उपासना नाना रूपों में की जा सकती है। किन्तु इनका अलग-अलग उपयोग है। भिन्न-भिन्न शक्तियों को जागृत करने के लिए भिन्न-भिन्न रूप में पंच परमेष्ठी की आराधना करनी होती है। प्राणशक्ति को जागृत करने के लिए 'अर्हं' का बहुत उपयोग है। ह, हुम्, ह्री, ह्र —इनका बहुत बड़ा महत्त्व है। प्राणशक्ति के जागरण के लिए अर्हं का चुनाव बहुत महत्त्वपूर्ण है।

प्रश्न—हम शरीर का आलंबन नहीं लेते, उसे देखते हैं। क्या यह सही है ?

उत्तर—आलंबन लेना और देखना—दोनों एक ही बात है। आलंबन की भाषा में कहें तो आलंबन है और देखने की भाषा में कहें तो देखना है। मंत्र का आलंबन कहां लेते हैं, उसे देखते हैं। मंत्र के उच्चारण की बात तो बहुत स्थूल है। उसे भी हमें देखना है। यह तो जब हम प्रयोग करेंगे तब पूरा समझ में आ जाएगा। शरीर में प्रकंपन हो रहे हैं। सामान्यतः आपको कुछ भी पता नहीं चलेगा। नाड़ी पर हाथ रखते ही प्रकंपन महसूस होने लगेंगे। श्वास चल रहा है। नाक पर अंगुली रखने से उसका आभास होने लग जाता है। हमारे भीतर अनेक प्रकार की ध्वनियां हो रही हैं, किन्तु हमें उनका पता ही नहीं है। हम उन ध्वनियों को सुन सकते हैं यदि हमारी प्राणशक्ति विकसित होती है। यदि हमारी एकाग्रता विकसित हो और हम शरीर में होने वाली, विशेषतः सुषुम्णा में होने वाली ध्वनि को सुन सकें, तो हमें ज्ञात होगा कि कितनी विचित्र ध्वनियां वहां हो रही हैं। भीतर ध्वनियां ही ध्वनियां हैं, प्रकंपन ही प्रकंपन हैं। सारा आकाश ध्वनियों से भरा पड़ा है। उन्हें पकड़ने का साधन चाहिए।

दर्शन की शक्ति के द्वारा, ज्ञान की शक्ति के द्वारा, हमारे शरीर में होने वाली ध्वनियों को सुनना तथा प्राणशक्ति या शब्द का उसके साथ अनुभव करना—यह है मंत्र की साधना।

आलंबन और देखने में कोई अन्तर नहीं है।

है, इसलिए रात को खाया गया भोजन उचित रूप से नहीं पचता। अपचा हुआ भोजन विकृतियां पैदा करता है। बहुत वैज्ञानिक बात है। वायु का दर्द भी दिन में कम महसूस होता है और रात में उसकी उग्रता बढ़ जाती है। सूर्य की किरणों से जो परमाणु शरीर को मिलते हैं, वे शक्ति पैदा करते हैं, पीड़ा कम अनुभूत होती है। जैसे ही रात आती है, शक्ति प्राप्त होना बंद हो जाती है, पीड़ा उभर आती है। कुछेक बाहरी निमित्तों से ऊर्जा घटती भी है और बढ़ती भी है। ऊर्जा के घटाव-बढ़ाव के आन्तरिक कारण भी है। जब मन में बुरे विचार आते हैं तब ऊर्जा घट जाती है। हमारा आभामंडल (ओरा) मलिन हो जाता है। जब विचार पवित्र होते हैं तब ऊर्जा बढ़ती है, आभामंडल पवित्र हो जाता है। अच्छे विचारों और भावनाओं के साथ तैजस शरीर की सक्रियता बढ़ती है और वह अधिक शक्ति पैदा करता है, शक्तिशाली हो जाता है।

मंत्र की आराधना पवित्र उपक्रम है। इससे पवित्र विचार आते है, पवित्र भावना आती है। इन पवित्र विचारों से ऊर्जा बढ़ती है।

प्रश्न—जब इन्द्रियां वश में नहीं होती, तब संकल्प-शक्ति का विकास हो सकता है? जब संकल्प-शक्ति का विकास नहीं होता है तो क्या इन्द्रिय और चित्त की एकाग्रता की बात सध सकती है?

उत्तर—बहुत टेढ़ा प्रश्न है। एक बच्चा पहले दिन चलना शुरू करता है। हम निश्चित मानते हैं कि जब तक पैरों में शक्ति नहीं होगी, वह नहीं चल सकेगा और यह भी मानते हैं कि जब तक वह नहीं चलेगा, उसके पैरों में शक्ति नहीं आएगी। दोनों बातें साथ-साथ हैं। इसका एक ही उपाय है कि बच्चा लड़खड़ाता है तो उसे अंगुली का सहारा देकर चलाएं। लड़खड़ाने दें, कोई निराशा की बात नहीं है। प्रारंभ में इसे नहीं रोका जा सकता। धीरे-धीरे बच्चा चलना सीख जाएगा। पैरों में शक्ति का संचार हो जाएगा। इसी प्रकार ध्यान का अभ्यास करें, संकल्प-विकल्प आएंगे। आने दें उन्हें, कोई चिन्ता न करें, किन्तु संकल्प को दृढ़ बनाए रखें 'मुझे ध्यान करना ही है।' थोड़ा लड़खड़ाएंगे तो संकल्प भी बढ़ेगा। जब संकल्प बढ़ेगा तो शक्ति भी बढ़ेगी। एक बिन्दु ऐसा आएगा कि संकल्प बहुत दृढ़ हो जाएगा, इन्द्रियों की ताकत भी बढ़ जाएगी, किन्तु हम उन पर संकल्पशक्ति से नियंत्रण पा लेंगे। उनको जीत लेंगे। लड़खड़ाना और चलना—दोनों में समझौता हो। डरें नहीं, निराश न हों। बीच में समझौता न तोड़ें। विजय हमारी होगी। युद्ध की पूरी तैयारी होने पर यदि समझौता तोड़ा जाता है तो कोई बात नहीं, अन्यथा हार निश्चित है। इसी रण-नीति पर हम चलें। अभी समझौता करके चलें और जब यह लगे कि युद्ध की पूरी तैयारी हो गई है तब रणभेरी बजा दें, फिर कोई चिन्ता नहीं है।

प्रश्न—शरीर और मन की बीमारी से हम परिचित हैं, किन्तु प्राण की

परिणाम होना चाहिए वह नहीं होता। एक बार किसी व्यक्ति ने विवेकानन्द से कहा—'मंत्र बेकार है। शब्दों में शक्ति ही क्या है?' विवेकानन्द ने कहा—'बड़े बेवकूफ हो, मूर्ख हो।' इतना सुनते ही वह व्यक्ति तमतमा उठा। उसने कहा—'स्वामीजी! आप इतने महान् संत होकर ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं?' विवेकानंद बोले—'अभी तो तुम कह रहे थे कि शब्द में क्या पड़ा है। शब्द का कोई परिणाम नहीं होता।' उसने स्वीकार कर लिया कि शब्द का परिणाम होता है।

प्रश्न—आत्मा शुद्ध चैतन्य है। उसमें से इतनी विकृतियां कैसे निकलती हैं?

उत्तर—बच्चा जब जन्म लेता है तब बिल्कुल साफ होता है। किन्तु जब वह घर के वातावरण में रहता है, गाली देना सीख जाता है, गुस्सा करना सीख जाता है। सब कुछ सीख जाता है। हमारा संसार परमाणुओं से आक्रान्त है। उस परमाणुमय संसार में रहने वाला आत्मा भी विशुद्ध कैसे रह पाता है? मिश्रण से सारी अशुद्धि आती है। इसीलिए मंत्र-साधना द्वारा हम ऐसा कवच तैयार करते हैं कि बाहर का कोई प्रभाव ही न हो। आत्मा तब अपने शुद्ध रूप में अपने-आप रहेगी।

प्रश्न—आपने बताया कि नमस्कार महामंत्र की आराधना अनेक रूपों में की जाती है। जैसे—अर्हम्, ओम्, असिआउसा आदि। एक मंत्र-साधक को क्या इन सबमें एक ही शब्दावली का चयन करना चाहिए? उसको किस विधि-विधान का पालन करना पड़ता है?

उत्तर—महामंत्र की उपासना विभिन्न रूपों में की जाती है, किन्तु इनका चुनाव इस आधार पर किया जाता है कि मंत्रसाधक के सामने प्रश्न क्या है? मंत्र-साधना का उसका लक्ष्य क्या है? उसे निश्चय करना पड़ेगा कि वह मन को किस शक्ति को जगाना चाहता है? उसके आधार पर ही महामंत्र के विभिन्न रूपों का चुनाव होगा।

यदि कोई साधक तीन चैतन्यकेन्द्रों को जागृत करना चाहता है तो उसे महामंत्र के 'ओम्' रूप की साधना करनी होगी। वह चाहता है कि उसका दर्शन-केन्द्र, ज्ञानकेन्द्र और आनन्दकेन्द्र—तीनों केन्द्र जागृत हों तो उसे 'ओम्' का तीन रंगों के साथ उन केन्द्रों में ध्यान करना होगा—दर्शनकेन्द्र पर लाल, ज्ञान केन्द्रपर श्वेत और आनन्दकेन्द्र पर पीला। तीनों केन्द्र सक्रिय हो जाएंगे।

कोई साधक केवल दर्शनकेन्द्र और ज्योतिकेन्द्र को जागृत करना चाहता है तो उसे इस महामंत्र के 'ह्रीं' रूप की आराधना करनी होगी।

इसी प्रकार भिन्न-भिन्न प्रयोजनों के लिए इसके भिन्न-भिन्न रूपों की उपासना विहित है। हमें चुनाव करना होता है कि हम किस चैतन्यकेन्द्र को जागृत करना चाहते हैं और उसके द्वारा मन की किस प्रकार की शक्ति को प्राप्त करना चाहते

है। यह सारा किसी मार्गदर्शक से जाना जा सकता है।

दूसरा प्रश्न है विधि-विधान का। जो मंत्र की आराधना करना चाहे वे सबसे पहले किसी गुरु से मंत्र की दीक्षा लें। निश्चित दिशा की ओर मुंह कर, निश्चित स्थान और निश्चित समय में आराधना करनी चाहिए। प्रतिदिन एक ही दिशा, एक ही स्थान और एक ही समय। जिस स्थान पर आराधना की जाती है वहां दूसरों का प्रवेश निषिद्ध होना चाहिए। आराधना के समय दूसरा कोई व्यक्ति वहां उपस्थित नहीं होना चाहिए। और भी अनेक विधि-विधान हैं। कुछ तो सभी मंत्रों के लिए सामान्य विधान हैं और कुछ विशेष मंत्रों के लिए विशेष विधान हैं।

साधारणतः प्रत्येक व्यक्ति को, और मुनि को भी, सात-आठ बार नमस्कार मंत्र

दोनों की विचित्र शक्तियां हैं। भयंकर बीमारियां, रोग जो दवाइयों से नहीं मिटता वह 'यंत्र' से मिट जाता है। प्रश्न होता है कि यन्त्रों के अन्दर रेखाओं के द्वारा लिखे हैं। उनसे क्या हो सकता है? रेखाओं में इतनी बड़ी शक्ति कहां से आ जाती है? आज यह प्रश्न अनुत्तरित नहीं रहा है। आज के वैज्ञानिकों ने जब पिरामिडों पर शोध की तो विचित्र तथ्य सामने आए। ऐसी बातें सामने आईं कि आप उनकी कल्पना तक नहीं कर सकते। आज पाश्चात्य देशों में इनका बहुत प्रचलन हो रहा है। दूध, दही, फल रखने के लिए पिरामिडों के आकार के बर्तन काम में लिए जाते हैं। अस्पतालें पिरामिडों के आकार में बनी हैं जिनके परिणाम बहुत अच्छे आए हैं। मन की एकाग्रता की वृद्धि के लिए ये पिरामिड बहुत उपयोगी सिद्ध हुए हैं। पिरामिडों में रखा हुआ पानी औषधि के रूप में काम आ रहा है। उसमें अनेक योग मिलते हैं। सौर परिवार से जो विकिरण आते हैं उनको ग्रहण करने में ये पिरामिड उपयोगी हैं। इन पिरामिडों की व्याख्या ने यंत्रों की प्राचीन व्याख्या को पुनः उज्जीवित कर दिया। आकृतियों में कितनी शक्ति होती है - यह आज रहस्य नहीं रहा। हर पुद्गल पुद्गल का आकर्षण करता है। हर परमाणु परमाणु का आकर्षण करता है। अमुक रचना अमुक प्रकार के परमाणुओं को आकृष्ट करती है। सभी आकृतियां एक ही प्रकार के परमाणुओं का आकर्षण नहीं करतीं। विभिन्न प्रकार के आकार विभिन्न प्रकार के परमाणुओं को ग्रहण करते हैं। इस सिद्धांत के आधार पर यंत्रों के विभिन्न न्यासों का विकास हुआ प्रतीत होता है।

नमस्कार महामंत्र के साथ-साथ विभिन्न मंत्रों का विकास हुआ। वैसे ही विभिन्न यंत्रों का भी विकास हुआ। किन्तु प्रस्तुत प्रसंग ही इतना अधिक लंबा हो गया कि मैं इन यंत्रों के विषय में कुछ नहीं कह सका। नमस्कार महामंत्र की व्याख्या जिस प्रकार विभिन्न मंत्रों के साथ की जाती है, वैसे ही विभिन्न यंत्रों के साथ भी की जाती है। इस विषय में और कभी प्रकाश डालूंगा।

प्रश्न—नमस्कार महामंत्र का ध्यान यदि ज्ञानकेन्द्र में श्वेत वर्ण के साथ किया जाए तो कैसी आकृति होगी?

उत्तर—ज्ञानकेन्द्र में पुरुष की आकृति का ध्यान करना चाहिए। मस्तिष्क में स्फटिकमय, निर्मल और स्वच्छ पुरुषाकार की कल्पना की जाए। कल्पना इतनी प्रबल हो कि वह सफेद मूर्ति साक्षात् दीखने लगे। वर्ण के साथ उस पुरुषाकृति की कल्पना को पुष्ट करना चैतन्य जागरण की प्रक्रिया है। आंख से देखना एक बात है और कल्पना का चित्र बनाकर मानसिक आंख से देखना दूसरी बात है। कल्पना का चित्र बनाना, संकल्प को पुष्ट करना और उसे यथार्थ तक ले जाना। इस सूत्र को हम याद रखें—कल्पना, संकल्प और यथार्थ।

प्रश्न—क्या ध्यान और भक्ति में भेद है?

उत्तर—ध्यान और भक्ति में भेद भी है और अभेद भी है। यदि भक्ति को

केवल उपासना का रूप माना जाए, स्तुति करना, भजन करना, नाम जपना मात्र माना जाए तो वह ध्यान से सर्वथा भिन्न है। भक्ति को यदि आध्यात्मिक रूप में माना जाए तो वह ध्यान से अभिन्न है।

आचार्य शंकर ने 'विवेक चूडामणि' नामक ग्रन्थ में भक्ति की बहुत सुन्दर परिभाषा प्रस्तुत की है—

'स्वस्वरूपानुसन्धानं, भक्तिरित्यभिधीयते।

—अपने स्वरूप का अनुसंधान करना भक्ति है। इस दृष्टि से भक्ति और ध्यान अभिन्न बन जाते हैं।

प्रश्न—मन को अधिक समय तक संवेदनशील कैसे बनाया जा सकता है?

उत्तर—जैसे कम समय तक उसे संवेदनशील बनाया जा सकता है वैसे ही उसे अधिक समय तक संवेदनशील बनाया जा सकता है। कम या अधिक समय की [illegible] पर निर्भर करती है। चाहे कोई चावल पकाए या सोने को पिघाले—[illegible] अपेक्षा होती है। [illegible] आंच की तीव्रता या मंदता, काल की [illegible] पर निर्भर [illegible] जाता है। किसके लिए कितनी आंच चाहिए यह [illegible] है।

प्रश्न—[illegible] ध्यान में [illegible] अन्तर है? क्या कायोत्सर्ग ध्यान में

नमस्कार महामन्त्र के विभाग, पद, सम्पदाएं तथा अक्षर प्रमाण

पद	अध्ययन	पद-क्रम	सम्पदाएं	अक्षर-प्रमाण	गुरु	लघु
णमो अरहंताणं	१	१	१	७	०	७
णमो सिद्धाणं	१	२	२	५	१	४
णमो आयरियाणं	१	३	३	७	०	७
णमो उवज्झायाणं	१	४	४	७	१	६
णमो लोए सव्वसाहूणं	१	५	५	९	१	८
एसो पंच णमोक्कारो,		६	६	८	१	७
सव्व पावप्पणासणो।		७	७	८	२	६
मंगलाणं च सव्वेसिं,		८	८	८	१	७
पढमं हवइ मंगलं		९	८	९	०	९
				६८	७	६१

नमस्कार मन्त्र के वर्ण और तत्त्व

वर्ण	तत्त्व	वर्ण	तत्त्व
णमो	आकाश	णमो	आकाश
अ	वायु	उ	पृथ्वी
र	अग्नि	व	जल
हं	आकाश	ज्झा	पृथ्वी-जल
ता	वायु	या	वायु
णं	आकाश	णं	आकाश
णमो	आकाश	णमो	आकाश
सि	जल	लो	पृथ्वी
द्धा	पृथ्वी-जल	ए	वायु
णं	आकाश	स	जल
णमो	आकाश	व्व	जल
आ	वायु	सा	जल
य	वायु	हू	आकाश
रि	आकाश	णं	आकाश
या	वायु		
णं	आकाश		

नमस्कार महामंत्र : अभ्यास की पद्धतियां

णमो अरहंताण

ज्ञान-केन्द्र में मन का केन्द्रीकरण और श्वेत वर्ण ।

पहला चरण

श्वास-प्रश्वास । आकाश में श्वास द्वारा श्वेत वर्ण वाला 'ण' लिखें और उसे साक्षात् देखने का अभ्यास करें । इसी प्रकार 'मो', 'अ', 'र', 'हं', 'ता', 'णं'—एक-एक अक्षर को लिखें और उसे साक्षात् देखने का अभ्यास करें ।

दूसरा चरण

श्वास-प्रश्वास । 'णमो अरहंताणं'—इस पूरे पद का ध्यान करें । आकाश में श्वास द्वारा लिखे हुए इस पूरे पद को साक्षात् देखने का अभ्यास करें ।

पहला चरण

अक्षर-ध्यान। आकाश में श्वास द्वारा लाल वर्ण वाला 'ण' लिखें और उसे साक्षात् देखने का अभ्यास करें। इसी प्रकार 'मो', 'सि', 'द्धा' 'ण'—एक-एक वर्ण लिखें और उसे साक्षात् करने का अभ्यास करें।

दूसरा चरण

पद ध्यान। 'णमो सिद्धाण'—इस पूरे पद का ध्यान करें। आकाश में श्वास के द्वारा लिखे गए इस पद को साक्षात् देखने का अभ्यास करें।

तीसरा चरण

पद के अर्थ का ध्यान। 'णमो सिद्धाण'—इस पञ्चाक्षरी मंत्र का अर्थ है—सिद्ध को नमस्कार। सिद्ध आत्मा का ध्यान दर्शन-केन्द्र में बाल-सूर्य के रूप में करें, बाल-सूर्य के साक्षात्कार का अभ्यास करें।

सिद्ध आत्मा का ध्यान शरद् पूर्णिमा के चन्द्रमा के रूप में करें। चन्द्रमा के साक्षात्कार का अभ्यास करें।

चौथा चरण

अपने सिद्धस्वरूप का ध्यान करें। शरीर के कण-कण में बाल-सूर्य जैसी प्रकाश-ज्योति का अनुभव करें फिर चन्द्रमा जैसी निर्मल ज्योति का अनुभव करें।

णमो आयरियाण

विशुद्धि-केन्द्र में मन का केन्द्रीकरण और दीपशिखा जैसा पीतवर्ण।

पहला चरण

अक्षर-ध्यान। आकाश में श्वास द्वारा पीत वर्णवाला 'ण' लिखें और उसे साक्षात् देखने का अभ्यास करें। इसी प्रकार 'मो', 'आ', 'य', 'रि', 'या', 'ण'—एक-एक वर्ण लिखें और उसे साक्षात् करने का अभ्यास करें।

दूसरा चरण

पद-ध्यान। 'णमो आयरियाण'—इस पूरे पद का ध्यान करें। आकाश में श्वास द्वारा लिखे गए इस पूरे पद को साक्षात् देखने का अभ्यास करें।

तीसरा चरण

पद के अर्थ का ध्यान। 'णमो आयरियाणं'—इस सप्ताक्षरी मंत्र का अर्थ है—आचार्य को नमस्कार। आचार्य का ध्यान स्वयंप्रकाशी और दूसरों को प्रकाशित करने वाली पीली दीपशिखा के रूप में करें। दीपशिखा के साक्षात्कार का अभ्यास करें।

चौथा चरण

अपने आचार्यस्वरूप का ध्यान करें। शरीर के कण-कण में स्वयंप्रकाशी और दूसरों को प्रकाशित करने वाली पीली दीपशिखा का अनुभव करें।

णमो उवज्झायाणं

आनन्द-केन्द्र में मन का केन्द्रीकरण और निरभ्र आकाश जैसा नील वर्ण।

पहला चरण

अक्षर-ध्यान। आकाश में श्वास द्वारा श्याम वर्ण वाला 'ण' लिखें और उसे साक्षात् करने का अभ्यास करें। इसी प्रकार 'मो', 'लो', 'ए', 'स', 'व्व', 'सा', 'हू', 'णं'—एक-एक वर्ण लिखें और उसे साक्षात् करने का अभ्यास करें।

दूसरा चरण

पद-ध्यान। 'णमो लोए सव्वसाहूणं'—इस पूरे पद का ध्यान करें। आकाश में श्वास द्वारा लिखे गए इस पूरे पद को साक्षात् देखने का अभ्यास करें।

तीसरा चरण

पद के अर्थ का ध्यान। 'णमो लोए सव्वसाहूणं'—इस नवाक्षरी मंत्र का अर्थ है—लोक के समस्त साधुओं को नमस्कार। साधु का ध्यान श्यामबिंदु के रूप में करें।

श्यामबिंदु के साक्षात्कार का अभ्यास करें।

चौथा चरण

अपने साधु-स्वरूप का ध्यान करें। शरीर के कण-कण में श्यामबिंदु का अनुभव करें।

दूसरा प्रकार

मुनि का ध्यान शक्ति-केन्द्र के स्थान पर 'पादपीठ' पर भी किया जाता है। शेष सब पूर्ववत्।

प्रयोजन

१. णमो अरहंताणं—आवरण-मूर्च्छा और अन्तराय को क्षीण-उपशांत करने के लिए।
२. णमो सिद्धाणं—शाश्वत आनन्द की अनुभूति के लिए।
३. णमो आयरियाणं—बौद्धिक चेतना की सक्रियता के लिए।
४. णमो उवज्झायाणं—मानसिक शांति और समस्या समाधान के लिए।
५. णमो लोए सव्वसाहूणं—कामवासना को क्षीण-उपशांत करने के लिए।

नव-पद-ध्यान

१. अष्ट दल कमल। कर्णिका में 'णमो अरहंताणं'। शेष चार दिशाओं की चार पंखुड़ियों में चार पद (णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं) स्थापित करें। चार विदिशाओं की पंखुड़ियों पर चार पद (एसो पंच णमोक्कारो, सव्व पावप्पणासणो, मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं) स्थापित करें।

अथवा विदिशावाली पंखुड़ियों में—णमो दंसणस्स, णमो णाणस्स, णमो चरित्तस्स, णमो तवस्स—इन चार पदों को स्थापित करें।

'ॐ' के बिना नौ पदों का स्मरण करना चाहिए।

अथवा

चार दल वाले कमल के बीच 'णमो अरहंताणं' तथा चार दलों में शेष चार पदों का स्मरण करना चाहिए। इसे 'अपराजित मंत्र' कहा जाता है।

फल—पाप का नाश।

२. • णमो अरहंताणं — ज्ञानकेन्द्र में
• णमो सिद्धाणं — ललाट में
• णमो आयरियाणं — दाएं कान में
• णमो उवज्झायाणं — पीछे और सिर के पश्चिम भा.

८. दाएं कंधे पर   मंगलाणं च सव्वेसिं
९. शिखा पर   पढमं हवइ मंगलं
१०. ललाट पर   णमो अरहंताणं
११. कण्ठ पर   णमो सिद्धाणं
१२. वक्षस्थल पर   णमो आयरियाणं
१३. नाभि पर   णमो उवज्झायाणं
१४. अंजलि में   णमो लोए सव्वसाहूणं
१५. बाएं पैर के अंगूठे पर   एसो पंच णमोक्कारो
१६. दाएं पैर के अंगूठे पर   सव्व पावप्पणासणो
१७ बाएं घुटने पर   मंगलाणं च सव्वेसिं
१८. दाएं घुटने पर   पढमं हवइ मंगलं
१९. बाएं हाथ पर   णमो अरहंताणं
२० दाएं हाथ पर   णमो सिद्धाणं
२१. बाएं कंधे पर   णमो आयरियाणं
२२. दाएं कंधे पर   णमो उवज्झायाणं
२३. शिखा पर   णमो लोए सव्वसाहूणं
२४. ललाट पर   एसो पंच णमोक्कारो
२५. कण्ठ पर   सव्व पावप्पणासणो
२६. वक्षस्थल पर   मंगलाणं च सव्वेसिं
२७. नाभि पर   पढमं हवइ मंगलं

४. अष्टदल वाले कमल की कल्पना कर कर्णिका में प्रथम पद (णमो अरहंताणं) तथा शेष आठ दलों में शेष आठ पद यथास्थान रखकर नवकार मंत्र का जाप करना चाहिए।

पुरुषाकार की कल्पना कर बाएं पैर के अंगूठे पर एक कमल की कल्पना करनी चाहिए जिसमें नौ पद यथास्थान उल्लिखित हों।

दूसरा कमल दाएं पैर के अंगूठे पर स्थापित करना चाहिए। इस प्रकार हृदय तक १२ स्थान होते हैं, बारह कमलों की स्थापना होती है। नौ बार जाप करने से ९ × १२ = १०८ नवकार मंत्र की एक माला सम्पन्न होगी।

५. दो कान, दो आंखें, नाक के दो छिद्र और एक मुंह—इन सात छिद्रों को सात अंगुलियों से ढककर 'णमो अरहंताणं' का जाप करें।

इससे दिव्य नाद, दिव्य स्पर्श, दिव्य संगीत, दिव्य रूप, दिव्य गंध, दिव्य रस का अनुभव होता है।

६. पांच पदों को पांच इन्द्रियों से युक्त करना—

णमो लोए सव्वसाहूण	९	श्याम
एसो पंच णमोक्कारो	८	श्वेत
सव्व पावप्पणासणो	८	श्वेत
मंगलाण च सव्वेसि	८	श्वेत
पढम हवइ मंगल	९	श्वेत

(श्वेत गाय के दूध जैसा।
रक्त प्रवाल जैसा।
पीत स्वर्ण जैसा।
नील प्रियंगु जैसा।
श्याम अञ्जन जैसा।)

वर्ण-युक्त अक्षर का चिन्तन करें। वह कम से कम दो-तीन फुट बड़ा हो। मन को स्थिर करें। मन की आंख से देखें। मन शान्त और स्वस्थ होगा तो अक्षर की आकृति स्पष्ट दीखने लगेगी। अन्यथा अक्षर का रंग और आकृति बदल जाएगी।

प्रत्येक अक्षर पर २०-३० सेकेन्ड, फिर बढ़ाते जाएं।

एक के बाद दूसरे अक्षर को स्मृति-पटल पर लाने की कुशलता प्राप्त करें। यह निरन्तर अभ्यास से सध सकेगी।

- निरंतर अभ्यास करने से प्रत्येक अक्षर की सुन्दर आकृति प्रत्यक्ष होने लगेगी। मन वहां स्थिर होगा। फिर धीरे-धीरे अक्षरों में से किरणें फूटने लगेंगी और सारे अक्षर ज्योतिर्मय बन जाएंगे।

संयुक्त-विधि

रात्रि का चौथा प्रहर। साधक पर्वत के शिखर पर स्थित है। अनन्त नीला आकाश। श्वेत वर्ण वाला 'ण' उभर रहा है। बहुत लम्बा-चौड़ा। फिर क्रमश —'णमो अ र ह ता ण'—अक्षर श्वेत वर्ण में इसी प्रमाण में एक-एक कर उभर रहे हैं।

- अरुणोदय हो गया है। बाल-सूर्य के वर्ण वाले पांचों अक्षर—'णमो सिद्धाण'—उभर रहे हैं।
- सूर्योदय हो चुका है। सूर्य आकाश के मध्य में स्थित है। मध्याह्न की वेला है। पीत वर्ण में 'ण मो आ य रि या ण'—ये सात अक्षर उभर रहे हैं। प्रत्येक का प्रत्यक्षीकरण।
- सायंकाल का समय आ गया है। अंधकार प्रगुन हो रहा है। नील वर्ण में 'ण मो उ व ज्झा या ण'—का चिन्तन किया जाए।
- रात्रि बीत रही है। मध्यरात्रि का समय। श्याम वर्ण में—'ण मो लो ए स व्व सा हू ण' का चिन्तन किया जाए।

समय

इसमें एक आवृत्ति में ३५-४० मिनट। तत् पश्चात्—'एसो पंच…मंगलं—इन तेतीस अक्षरों का ध्यान श्वेत वर्ण में करना चाहिए। इस ध्यान में भी ३५-४० मिनट लगेंगे। इस प्रकार एक बार नमस्कार महामंत्र के ध्यान में ७०-८० मिनट लगेंगे।

१०. अष्ट दल वाले कमल की हृदय में कल्पना करें।

प्रथम पद 'णमो अरहंताणं' को कर्णिका में स्थापित करें। तत् पश्चात् चार पदों को चार दिशाओं-दलों पर स्थापित करें तथा 'एसो पंच……'—इन चार पदों को चार विदिशाओं वाले दलों पर स्थापित करें।
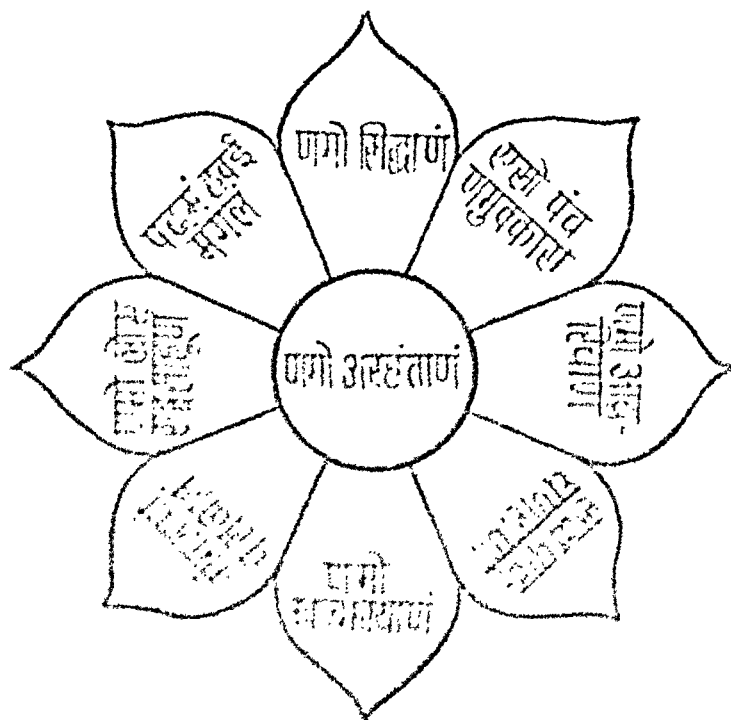
11. हाथ से माला फेरना।

दाएं हाथ से नन्द्यावर्त की पद्धति से १२ बार,

बाएं हाथ से शंखावर्त की पद्धति से ९ बार,

कुल १२×९=१०८ बार।

बाएं हाथ—शंखावर्त

७	८	९	१०
६	१	२	११
५	४	३	१२

तर्जनी, मध्यमा, अनामिका, कनिष्ठा

दाएं हाथ—नन्द्यावर्त

३	४	५	१२
२	७	६	११
१	८	९	१०

कनिष्ठा, अनामिका, मध्यमा, तर्जनी

रक्षा-कवच

दूसरे के शरीर में अपने शरीर को स्थापित करना—वहां स्थापित अपने मस्तक, मुख, कण्ठ, हृदय और चरण-स्थानों में क्रमश: अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और मुनि पदों का न्यास करना। इससे रक्षा होती है।

- हृदय में चार दल वाले कमल की कल्पना करें। क्रमश: 'णमो सिद्धाण'—ऐसे पांच वर्ण वाले मंत्र का ध्यान करें।

  फल—कर्म-क्षय।

- ॐ नम सिद्धं

  ॐ—[illegible] पर

शरीर-केन्द्र और नमस्कार महामंत्र [१]

शरीर-केन्द्र और नमस्कार महामंत्र [२]

१. णमो अरहंताणं—मुख
२. णमो सिद्धाणं—कपाल
३. णमो आयरियाणं—कंठ
४. णमो उवज्झायाणं—दायां हाथ
५ णमो लोए सव्वसाहूणं—बायां हाथ
६. एसो पंच णमुक्कारो...पीठ

(पंचपरमेष्ठी मंत्रराज ग्रन्थ से साभार)

क्रोध-विजय

नाभिकमले क्रोधनिवारणार्थं चतुर्ज्ञानेन चतुःशरणपूर्वकं परमपदध्यानम्।
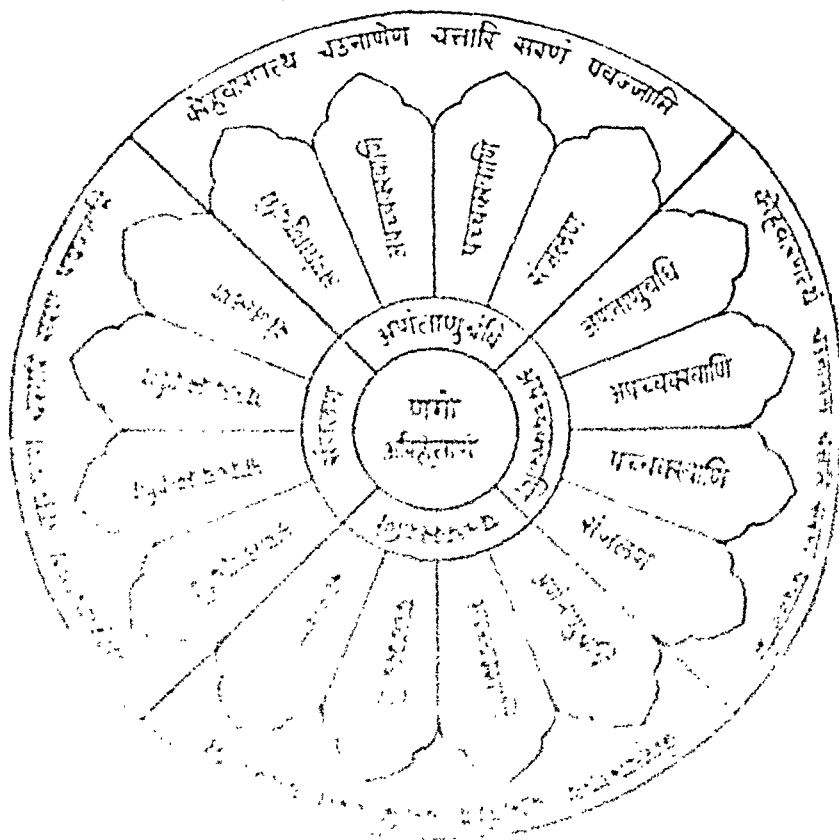
मान-विजय

हृदयकमले माननिवारणार्थं चतुर्ज्ञानेन चतुःशरणपूर्वके परमपदध्यानम्।
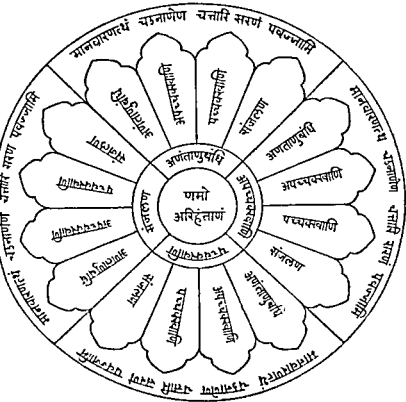
(पंचपरमेष्ठी मंत्रराज ग्रन्थ से साभार)

माया-विजय

कण्ठकमले मायानिवारणार्थं चतुर्ज्ञानेन
चतुःशरणपूर्वकं परमपदध्यानम्।

मायावारणत्थं चउनाणेण चत्तारि शरणं पवज्जामि

णमो अरिहंताणं

अणंताणुबंधि

मंगलम्

अणंताणुबंधि

अपच्चक्खाणि

पच्चक्खाणि

लोभ-विजय

तालुकमले लोभनिवारणार्थं चतुर्ज्ञानेन
चतुःसरणपूर्वक परमपदध्यानम्।

(पंचपरमेष्ठी मंत्रराज ग्रन्थ से साभार)

मो

णा अ

पूर्व ॐ ए पश्चिम

पं हं

ता

४. ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नम.।
५. ॐ अर्हं अ सि आ उ सा नम

[एक लाख जाप]

६. ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं ॐ अ सि आ उ सा नम। [यह त्रिभुवनस्वामिनी विद्या है। एक लाख जाप। सर्वसिद्धि।]
७ ॐ ह्रीं अर्हं अ सि आ उ सा क्लीं नम।

[विघ्ननाशक।]

८ ॐ ह्रः ॐ ह्रीं अर्हं ऐं श्रीं अ सि आ उ सा नम।
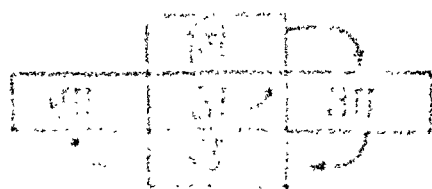
[वाद विजय]

९. शरीर रक्षण के लिए—'अ' मस्तक मे, 'सि'—मुख मे, 'आ'—कण्ठ मे, 'उ'—हृदय मे, 'सा'—चरण मे स्थापित करें।

अर्हं का ध्यान

१ अर्हं अरहन्त की साक्षात् सर्ववर्णमयी मूर्ति है। इस अर्हं का सम्पूर्ण मेरुदण्ड (मेरुदण्डगत सुषुम्ना) मे ध्यान करने वाले आचार्य समस्त श्रुतार्थ के प्रवक्ता होते हैं।

२ नाभिगत सुवर्णकमल के मध्य मे 'अर्हं' की कल्पना करें। फिर वह 'अर्हं' आकाश मे सभी दिशाओ मे सञ्चरण कर रहा है ऐसा चिन्तन करें।

जिसका मन इस ध्यान मे लीन हो जाता है वह साधक स्वप्न में भी अर्हं के अतिरिक्त और कुछ नहीं देखता।

ॐ पाच (अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु) पदो से निष्पन्न है। सस्कृत के सोलह अक्षर—'अर्हत्-सिद्धाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो नम:' से निष्पन्न है। इनको सोलह पखुडियो वाले हृत्कमल मे स्थापित करें। बीच की कर्णिका मे 'सिद्ध' की स्थापना करें।

निष्पत्ति—१. दो सौ बार ध्यान करने मे एक उपवास का फल।

—२. 'अरहतसिद्ध'—इन छह अक्षरो का तीन सौ बार जाप करने से एक उपवास का फल।

—३. 'अरहन्त'—चार सौ बार जाप करने से एक उपवास का फल।

—४. [अर्हं (ह्रँ) का अवग्रह 'अ' रूप] 'अ' कुण्डलिनी स्वरूप है। नाभिकमल मे 'अ' का पाच सौ बार ध्यान करने मे एक उपवास का फल।

युवाचार्यश्री महाप्रज्ञ

जन्म . वि० स० १९७७, आषाढ़ कृष्णा १३, टमकोर (राज०)।

दीक्षा वि० स० १९८७, माघ शुक्ला १०, सरदारशहर (राज०)।

निकाय-सचिव : वि० स० २०२२, माघ शुक्ला ५, हिसार (हरियाणा)।

महाप्रज्ञ उपाधि अलंकरण : वि० स० २०३५, कार्तिक शुक्ला १३, गगाशहर (राज०)

युवाचार्य पद . वि० स० २०३५, माघ शुक्ला ७, राजलदेसर (राज०)।

योग से सबंधित आपके प्रमुख ग्रन्थ हैं—

- मन के जीते जीत
- किसने कहा मन चचल है
- चेतना का ऊर्ध्वारोहण
- जैन योग
- मैं : मेरा मन . मेरी शान्ति
- प्रेक्षा-ध्यान।

विभिन्न विषयों पर अब तक आपके लगभग एक सौ ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।